निराला और पन्त के काव्य के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी. फिल (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2001

निर्देशिका
डॉ. शैल पाण्डेय
रीडर
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्री
श्रीमती चन्दा देवी
एम० ए० (हिन्दी),
यू०जी०सी० लेक्चररशिप

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भूमिका

प्रत्येक कवि या रचनाकार अपने जीवन क्रम मे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक युगीन परिस्थितियो, व्यक्तित्वो, विभिन्न पारिवारिक स्थितियो से साक्षात्कार करता है। इस जीवनधारा के प्रवाह मे यह अवश्यम्भावी ही है कि वह सवेदनशील व्यक्ति उनसे प्रभावित हो। यह प्रभाव और प्रेरणा उनकी रचना मे अनायास ही अवतरित हो जाता है, इसका तात्पर्य यह कदापि नही होता है कि कवि की अपनी मौलिकता नही होती अपितु वह उन प्रेरणा स्रोतो और प्रभावो की छाप को अपने अन्त करण की मूलभूत अनुभूतियो की मधुर चाशनी मे घोलकर नये आस्वाद मे प्रस्तुत करता है, अत उसकी मौलिकता अक्षुण्ण रहती है।

इस शोध प्रबन्ध मे निराला और पन्त के काव्य के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोतो को खोजने का प्रयास किया गया है। निराला और पन्त पर विविध शोध हुए है किन्तु यह विषय विशेष रूप से तुलनात्मक दृष्टि से अछूता है। दोनो कवियो के अध्यात्म प्रेरित काव्य पर विचार करते हुए मैने पाया कि दोनो मे एक ही युग का होने के कारण अनेक समानताएँ होते हुए भी अपने व्यक्तित्व के अनुसार विषमताये भी है, ठीक वैसे ही जैसे भक्तिकालीन कबीर और जायसी के काव्य मे। कबीर अक्खडपन के साथ जहाँ हिन्दू-मुसलमान दोनो पर व्यग्यबाण चलाते हुए उनके दोषो को दिखाकर राह पर लाने का प्रयास करते है, वहीं जायसी दोनो धर्मों को प्रेम से एकसूत्र मे बाँधने का प्रयास करते है किन्तु लक्ष्य एक ही था ईश्वर के समक्ष मानवमात्र की समानता प्रतिपादित

करना। निराला और पन्त दोनो ही छायावादी कवि है, दोनो की काव्यात्मा प्रकृति मे तदाकार होकर प्रकृति के विराट स्वरूप का उद्घाटन करती है, दोनो कवि एक ही युग और वाद के रचनाकार होने के कारण लगभग समान प्रेरणा स्रोतो से प्रभावित हुए है, फिर भी उनके व्यक्तित्व के अनुसार उनमे भिन्नता है। निराला, अनुभूति कैसी भी हो उसे उत्साह से ग्रहण करते है। उनकी अदम्य आत्मशक्ति भौतिक आघातो मे भी प्रकाशित रहती है। 'करुणा' और 'उत्साह' दो भावनाये उनके व्यक्तित्व को एक ओर मोम की भॉति द्रवणशील बना देती है तो दूसरी ओर वज्रादपि कठोर भी बनाती है, यही कारण है कि वे सर्वशक्तिमयी चेतना के समक्ष आत्मा की एकता की अनुभूति करते हुए दुर्बल, शोषित, गरीब को पीडित देखकर करुणा से भर उठते है वही उसके कारण को उखाड फेकने के लिए हुकार करते है। कवि पन्त भी एक ही परमसत्ता की अनुभूति सभी मानवमात्र मे करते हैं। उनका सुकुमार हृदय अनुभूति और कल्पना की मधुरता में भीगकर आत्मा और परमात्मा की अभिव्यक्ति सहजता के साथ करता है। अपनी प्रार्थना मे वे कहीं-कहीं इतना आत्मविभोर और उत्कठित हो उठते है कि अपने अस्तित्व को विश्व मे मिला देने के लिए तैयार हो जाते है। मानव की दीन-हीन दशा से उनका हृदय दया, करुणा से क्रन्दन कर उठता है, जिसको अत्यन्त भावविह्वल होकर अभिव्यक्त करते है। अपने ईश्वर, जीव, जगत के चिन्तन और दर्शन को वे 'परिवर्तन' जैसी कविताओ मे स्थिरता के साथ चित्रित करते है ऐसे वर्णनो मे पन्त जी निराला की भॉति आवेश में न आकर अनुभूति, कल्पना, चिन्तन का मिश्रण करके हार्दिक तन्मयता के साथ काव्य सृजन करते है, विश्वव्यापी गूढतम समस्याओं का अंकन पन्त जी ने दूर से तमाशा देखने वाले दर्शक की तरह किया है न कि ताण्डव

क्रीडा मे भाग लेने वाले खिलाडी की भॉति। इस आवेशहीनता को पन्त जी कल्पना के द्वारा विविध सजीव चित्रो के माध्यम से पूरा करते है।

इस प्रकार निराला और पन्त दोनो ही स्वय को उस विराट सत्ता से भिन्न नहीं देखते, जो बाहर देखते है उसी का अनुभव वे भीतर करते है। दोनो का ही अद्वैतदर्शन उनके प्रेमदर्शन से मेल रखता है। इसी मेल की भूमि पर निराला समाज की खाई को पाटने का उपक्रम करते है तो पन्त मानव जाति के भावी निर्माण, विश्वकल्याण के लिए एक सांस्कृतिक आन्दोलन की अपेक्षा करते हैं, तथा नैतिकता के साथ मन और कर्म मे सामजस्य आवश्यक मानते हैं। दोनों कवियों के प्रेम की भूमि 'लौकिक' से 'अलौकिक' तक फैलकर अध्यात्म की सीढी पर जा पहुँचती है जहॉ नए दर्शन के प्रतिष्ठापन मे वे ईश्वर की व्यावहारिक सत्ता की दार्शनिक व्याख्या करते है।

इस शोध प्रबन्ध मे मैने कवि द्वय की कविताओं के साथ ही प्रसगवश उनके गद्य, लेखो का उद्धरण भी दिया है, क्योकि इनमें कवि ने अपने विचारो, परिस्थितियो और प्रभावो की स्पष्ट स्वीकारोक्ति की है, तथा इन लेखो से कवि के संस्कार, मूलभूत विचारो को भी जानने मे सहायता मिली है। प्रबन्ध का कलेवर कहीं बहुत लम्बा न हो जाय इस भय से कहीं-कहीं उद्धरण मे कविता न देकर उसके अर्थ की अभिव्यक्ति मात्र कर दी है।

अपने प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे बहुधा विवेच्य वस्तु का रूप निर्धारण किया गया है। आध्यात्मिकता के स्वरूप पर विचार करते हुए आध्यात्मिकता क्या है तथा धर्म और दर्शन से किस प्रकार भिन्न या अभिन्न है यह बताने का प्रयास किया है। जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों का होना मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। यही

अध्यात्म हमारे युगीन साहित्य मे प्रतिफलित होता है तथा आने वाले युगो मे भावी पीढी का मार्गदर्शन करता चलता है।

दूसरे अध्याय मे तद्‌युगीन नवजागरण आन्दोलन की भूमिका पर दृष्टिपात किया गया है कि किस प्रकार नवजागरण आन्दोलन अध्यात्म को मानव कल्याण के लिए प्रमुखता देता है। अनेक महानुभाव तथा सस्थाये समाज से गलित रुढिग्रस्त परम्पराओ के उन्मूलन तथा वास्तविक आध्यात्मिक मूल्यो के प्रतिष्ठापन के लिए कटिबद्ध थे अत धार्मिक सकीर्णता का विरोध किया गया। मानवतावाद तथा विश्वप्रेम की यह भावना तत्कालीन साहित्य मे दिखाई देने लगी जो नि सदेह 'आध्यात्म' से प्रेरित थी। निराला और पन्त के काव्य मे भी इस नवजागरण आन्दोलन के फलस्वरूप अध्यात्म का प्रस्फुटन दिखाई देता है।

तीसरे अध्याय मे निराला के काव्य मे जिन प्रेरणा स्रोतो से 'अध्यात्म' उद्‌बुद्ध हुआ उस पर विचार किया गया है। निराला जी पर रामकृष्ण परमहस एव स्वामी विवेकानन्द का गहरा प्रभाव पडा साथ ही बगाल मे रहने के कारण वहॉ की रम्यस्थली, बगला कविता और रवीन्द्रनाथ टैगोर से भी वे प्रभावित हुए बिना नही रह सके। तुलसीदास तथा उनके रामचरितमानस से निराला जी अभिभूत थे। इन सभी प्रभावो को आत्मसात करते हुए भी वे अपनी आन्तरिक अनुभूति को कही नही छोडते है, जो उनकी अपनी निजी सम्पदा है। पारिवारिक सस्कारो, जीवन के सघर्षो ने भी उनकी आन्तरिक अनुभूति को प्रेरित करके उनके व्यक्तित्व को बनाया। अत आन्तरिक अनुभूति और एकदम अलग प्रकार के व्यक्तित्व मे उनकी मौलिकता पग-पग पर दीप्त होती है।

चौथे अध्याय मे पन्त जी के काव्य मे प्रभावो और प्रेरणाओ पर विचार किया गया है। कवि पन्त मार्क्सवाद के भौतिकवादी दर्शन और गाधीवाद के सत्य, अहिंसा से युक्त अध्यात्मवादी दर्शन दोनो से प्रभावित हुये, वे मानव कल्याण हेतु इन दोनो का समन्वय प्रस्तुत करते है। पन्त जी पर महर्षि अरविन्द के अध्यात्म दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव पडा। इनके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, उपनिषद् तथा अन्य छुटपुट व्यक्तित्वो, विचारो से भी वे प्रभावित हुये। किन्तु निराला की ही भॉति पन्त का अन्त करण भी अपनी जन्मभूमि के प्राकृतिक वातावरण, पारिवारिक परिवेश से प्रभावित था। सस्कारबद्ध रूप मे 'अध्यात्म' उनकी आत्मा मे विकसित हो रहा था जो अरविन्द दर्शन के सम्पर्क मे आकर पूर्णता को प्राप्त हुआ। अत विविध प्रभावो के साथ उनके अन्त करण की निजी अनुभूति ने उनके काव्य को मौलिकता प्रदान की।

पाचवे अध्याय मे निराला और पन्त पर पडे हुए विविध प्रभावो और प्रेरणा स्रोतो की समानता और असमानता को दर्शाया गया है।

छठे अध्याय, उपसहार मे निष्कर्ष देकर परिसमाप्ति की गई है। दोनो कवियो के काव्य मे उनका व्यक्तित्व भिन्नता लिए हुए हर जगह देखा जा सकता है, यह भिन्नता अनुभूति की ही नहीं अपितु शैली की भी है।

मै निराला और पन्त साहित्य के उन सभी मर्मज्ञ विद्वानो, समीक्षको, लेखकों और कवियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी सहायता मुझे प्रबन्ध लेखन के कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपलब्ध हुई, उन कृतियों के उद्धरण इस प्रबन्ध में मैंने प्रसगानुसार प्रस्तुत किये है।

अन्त मे मै परम श्रद्धेया डॉ० शैल पाण्डेय का श्रद्धापूर्ण अभिवन्दन करके कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूॅ जिनके प्रेरणाप्रद एव विद्वतापूर्ण निर्देशन मे यह शोध कार्य निष्पन्न हुआ। प्रबन्ध लेखन के प्रत्येक चरण मे मुझे उनके अपार पांडित्य, क्रियात्मक प्रेरणा तथा स्नेह दृष्टि से परिष्कृत पथ पर आगे बढने की शक्ति प्राप्त हुई। आशा करती हूॅ कि भविष्य मे भी उनका स्नेह और सहृदयता प्राप्त होती रहेगी।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राध्यापक बन्धुओ तथा गुरुजनो के प्रति हार्दिक धन्यवाद अर्पित करती हूॅ जिन्होने इस विषय पर कार्य करते हुए हर कदम पर मेरा उत्साहवर्धन किया तथा सौहार्दपूर्ण सहयोग दिया।

(चन्दा देवी)

विषय सूची

अध्याय-प्रथम

आध्यात्मिकता का स्वरूप

अध्याय-१

आध्यात्मिकता का स्वरूप

अध्यात्म शब्द अधि और आत्म शब्द से मिलकर बना है। 'अधि' का तात्पर्य है जानना, 'आत्म' का अर्थ है स्वय को। अर्थात् आत्म ज्ञान की इच्छा करना उसमे प्रवृत्त होना ही अध्यात्म है। मनुष्य के भीतर जब इस जिज्ञासा का भाव जागृत हुआ कि मै कौन हूॅ? मेरा तथा इस समस्त सृष्टि का नियन्ता कौन है? समस्त जीवन संघर्षों से मुक्ति और मोक्ष किसको ज्ञात कर लेने के बाद प्राप्त हो जाता है? किसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है। इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के लिए व्यक्ति आध्यात्मिक अन्वेषण मे संलग्न होता है। वह सर्वतोकामी महिमावान परमतत्व की सहायता से आत्म ज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है। आत्मा को परमात्मा का अश माना गया है। असीम को चिन्तन का विषय और समस्त सृष्टि का स्रोत माना गया है। अत समीम आत्मन् से असीम आत्मन् की ओर अग्रसर होना ही आध्यात्मिकता है।[1] श्रीमद् भगवद्गीता मे कहा गया है कि-"शरीर की अपेक्षा इन्द्रिया श्रेष्ठ है और इन्द्रियो की अपेक्षा मन। मन से श्रेष्ठ बुद्धि है, और जो बुद्धि से भी उत्तम है वह आत्मा है। आत्मा से भी उत्तम परमात्मा है।" यह आत्म तत्व और इससे सम्बन्धित मनन चिन्तन ही भारतीय सस्कृति की आध्यात्मिक सम्पत्ति है। कठोपनिषद् का निम्नोक्त मंत्र इस सम्बन्ध मे दृष्टव्य है-

[2]अणोरणोयान्महतोमहीयानात्मस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतु. पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन।।

---

१ गीता ३/४२

२ कठोपनिषद्- प्रथमोत्ध्याय, द्वितीया वल्ली, २० श्लोक।

वह परम तत्व विश्व देशकाल की दृष्टि से अनन्त और सनातन है वह चित् शक्ति इस जड जगत मे अगणित प्रकार से प्रकाशित होती है फिर भी वह अनन्त चित सत्ता स्वरूपत स्वयभू सनातन एव अपरिणामी है। यह आत्मा अमर है। आत्म तत्व के सम्बन्ध मे ये बाते वेदो मे कही गयी है। वेदो का अर्थ है भिन्न-भिन्न कालो मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यो का सचित कोष। उपनिषदो की परम्परा मे तीन प्रमुख साधनो द्वारा साधक अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचता है-श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इनका सकेत महर्षि याज्ञवल्क्य ने इन वाक्यो मे किया है-

आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो
मैत्रेयी (वृहदारण्यक उपनिषद्)

शास्त्र के वचनो या गुरु के उपदेशो को प्रथमत सुनना चाहिए तत्पश्चात् उस पर तर्क द्वारा विचार करना चाहिए। विश्लेषण, समीक्षण की यह स्थिति सत्यता के प्रमाण का परीक्षण करने के लिए होती है। सत्यता सिद्ध हो जाने के पश्चात् जब हमारा विश्वास उस तथ्य के प्रति दृढ होता है तब मनन की अवस्था आती है। मनन द्वारा व्यक्ति निश्चित तथ्यो के चिन्तन मे कृतकार्य होता है। अन्तिम स्थिति मे योग मार्ग से उस निश्चित तत्व का लगातार चिन्तन करना ही निदिध्यासन है। इन उपायों से आत्मा का दर्शन करके व्यक्ति परमात्मा की प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है।

मानव जीवन की एक सबसे प्रमुख प्रेरणा है मुक्ति प्राप्त करना या अनन्तत्व को प्राप्त करने की इच्छा और उसके प्रति प्रेम। मनुष्य की तीव्र

आकाक्षा ही उसे अनन्तत्व के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। आरम्भ मे वह इस बारे मे कुछ कम सचेत रहता है, किन्तु वह अपनी इस सहजात अचेतन आकाक्षा से प्रेरित होकर उस समय तक आगे अग्रसर होता जाता है जब तक उसके विचार एक निश्चित रूप नहीं धारण कर लेते और उसका लक्ष्य एक सचेतन प्रयास की वस्तु नहीं बन जाता। इस सासारिक जीवन के अतिरिक्त मानव जीवन का एक दूसरा पहलू भी है जो व्यक्ति को इस दृश्यमान जगत से परे किसी अस्तित्व के बारे मे सोचने के लिए विवश करता है। वह अनुभव करता है कि परिस्थितियो के सामने वह असफल और असहाय है। कभी-कभी उसकी समस्त युक्तियॉ, योजनाए, कामनाए, प्रयास निरर्थक सिद्ध हो जाते है। उसे लगता है कि कोई अदृश्य शक्ति उसके भाग्य निर्माण के पीछे कार्यरत है। उसकी इच्छा के बिना वह एक कदम नहीं रख सकता। इसीलिए व्यक्ति कभी-कभी अनजाने मे या अपनी इच्छा के विपरीत भी उस असीम शक्ति के सामने अपनी सहायता, सम्बल और मार्गदर्शन हेतु प्रार्थनारत हो जाता है। वह अनुभव करता है कि यह ससार उस महान शक्ति की प्रेरणा की परिणति है जो सृष्टि के पीछे विद्यमान है। मनुष्य को वास्तव मे यथार्थ व्यक्तित्व तो तब प्राप्त होता है जब वह उस शक्ति के साथ तद्रूपता स्थापित कर लेता है। अर्थात् उसी मे उसकी समस्त आशा, शक्ति, आनन्द निहित हो जाते है। जिस क्षण हम अपनी वैयक्तिक इच्छा का परित्याग करते है उस समय उस महान शक्ति के उत्तराधिकारी बन जाते है तथा दृढ़ता से युक्त होकर यथार्थमुक्ति का आस्वादन करते हैं। हमें शीघ्र ही अनुभव होने लगता है कि जिस महान शक्ति की कामना और चर्चा हम करते हैं वह बाहर ही नहीं हमारे भीतर भी स्थित है। इस ससार में कोई भी व्यक्ति अपने जीवन से सतुष्ट नहीं है, एक वस्तु प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह दूसरी वस्तु को और फिर तीसरी वस्तु को प्राप्त करने के लिए

भागता रहता है जिससे उसे पूर्ण आराम, आनन्द और शक्ति मिल सके, किन्तु सुख-दु खात्मक जीवन मे उसकी कामना सतुष्टि नही पाती है। अन्त मे थककर व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु की कामना करता है जो उसे चिर आनन्द और सुख दे सके। यह शाश्वत असतुष्टि ही मनुष्य को अनन्त स्वतन्त्रता की इच्छा की ओर उन्मुख करती है। वह उस अवस्था को प्राप्त करना चाहता है जिसके बाद किसी अन्य प्राप्तव्य की इच्छा नहीं रह जाती। अर्थात् वह अनन्त को प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार उस परमात्मा की खोज मानव स्वभाव मे मूलभूत रूप मे विद्यमान है। भले ही वह जागृत या सुप्त हो पर वह है अवश्य।

सांसारिक वस्तुओ या आवश्यकताओ के लिए ईश्वरीय कृपा की इच्छा करना धार्मिक प्रेरणा का स्थूल रूप ही है। केवल दुर्बल लोग ही इसका आश्रय लेते है। किन्तु कुछ ऐसे भी लोग होते है जो कामना रहित होकर ईश्वर की ओर उन्मुख होते है उनका ईश्वर के प्रति प्रेम, केवल प्रेम के लिए ही होता है। सृष्टि की भव्यता, विश्व का आश्चर्यमय स्वरूप तथा प्रकृति के पीछे स्थित सुश्रृखलता और क्रमबद्धता को देखकर वे आश्चर्य अभिभूत हो उठते है तथा सृष्टिकर्ता के प्रति सहज प्रेम से गद्गद हो जाते है। ऐसा साहसिक व्यक्ति प्रेम और भक्ति की उस अन्त प्रेरणा द्वारा परिचालित होता है जिसे रोक पाना उसके स्वयं के लिए सम्भव नहीं होता है। अन्य किसी व्यक्ति को भले ही उसकी भावुकता के पीछे युक्ति ढूढने मे कठिनाई हो और वह मूर्ख या पागल प्रतीत होता हो, किन्तु उस भक्त की भावनाए और विचार स्वय उसके लिए यथार्थ है यह भावनाएं उस व्यक्ति को आनन्द, शक्ति, शान्ति प्रदान करके स्वार्थपूर्ण सासारिकता की क्षुद्रता से उसे ऊपर उठा देती है।

मन ही सुख-दु ख का कारण है। अत यथार्थ आनन्द पाने के लिए हमे अपने मन पर ध्यान देना होगा। यदि हम अपने मन को नियन्त्रित कर सके तो समस्त ससार पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेगे, इससे हमारा आनन्द बाधित नही होता न ही हमारा आन्तरिक जीवन ही प्रभावित होता है। मन को वश मे करने का अथवा एकाग्र करने का एकमात्र उपाय है गहन मनन, चिन्तन और ध्यान। जिस क्षण हमारा मन एकाग्र हो जाता है उसी क्षण हम जगत के मूल आधार को पहचानने लगते है। लोक-परलोक का रहस्य उद्घाटित होने लगता है। सभी प्रकार के सासारिक प्रभावो से मुक्त होकर हम यथार्थ मुक्ति का लाभ प्राप्त करते है। मन की अवस्था प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है, जबकि यह शरीर नाशवान है। मन अदम्य घोडे की भाति चचल और दुर्दान्त है। अत जब मनुष्य आनन्द पाने के लिए मन और शरीर पर निर्भर रहता है तो वह कष्ट का भागी बनता है। शाश्वत शान्ति प्राप्त करने के लिए तो मन और इन्द्रियो की सीमा से परे जाना होगा। कठोपनिषद् मे यमराज ने नचिकेता को रथ रूपक के द्वारा परम पद प्राप्त करने का मार्ग बताया है, वे कहते है- ''आत्मा को रथी समझो शरीर को ही रथ समझो, बुद्धि को सारथी समझो और मन को लगाम समझो'[1] अर्थात् जब बुद्धि रूपी सारथी मन की लगाम को वश मे रखकर इस शरीर रूपी रथ को सन्मार्ग पर ले जाता है, तभी आत्मा रूपी रथी अपने लक्ष्य मुक्ति मार्ग तक पहुॅच सकता है। स्वलक्ष्य अर्थात् परमात्मा तक सुरक्षित पहुॅचने के लिए मानव की बुद्धि को विकारों से दूर रहकर और सावधान होकर इन्द्रियाधिष्ठाता मन को अपनी पकड मे रखकर उसके माध्यम से पच कर्मेन्द्रियो को वशीभूत करके सन्मार्ग सदाचार के मार्ग से यात्रा करनी चाहिए। यदि बुद्धि रूपी सारथी असावधान हुआ तो आत्मा रूपी रथी को गड्ढे मे गिरा देगा, और अपने गन्तव्य

---

१ कठोपनिषद्- प्रथमोध्याय- तृतीय वल्ली, ३ श्लोक।

तक वह नही पहुँच सकेगा। अत मनुष्य की इन्द्रिया, मन और बुद्धि सब वशीभूत हो, मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है।

आध्यात्मिक भावना मानव चेतना मे तीन रूपो मे दिखाई देती है-विचार भावना और सकल्प। किन्तु मूलत वह भावना से आच्छादित रहती है। आध्यात्मिकता का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तरतम से है। मनुष्य बुद्धि और विवेक के माध्यम से तथ्यो की खोज करता है, उनका अनुभव करता है, और अपनी अनुभूतियो के माध्यम से उन्हे व्यक्त करता है। आध्यात्मिकता एक मानसिक क्रिया है जो विचार, भावना, सकल्प इन तीनो वृत्तियो द्वारा प्रकट होती है। इन वृत्तियो को मानव जीवन की इकाई के रूप मे नहीं अपितु क्रिया के रूप मे देखा जा सकता है। उपर्युक्त तत्वो मे से एक का भी अभाव होने से अध्यात्म साधना असम्भव हो जायेगी। धार्मिक चेतना का पूर्ण और वास्तविक स्वरूप तभी प्राप्त हो सकता है जबकि धार्मिक चेतना के तीनो पहलुओ मे समुचित समन्वय हो। आध्यात्मिकता मे व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन होता है।

जिस प्रकार विचार, भाव, सकल्प मन के तीन अग है, उसी प्रकार धार्मिक चेतना के भी तीन अंग होते है-ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। मनुष्य ज्ञानात्मक पहलू द्वारा उस असीम शक्ति के प्रति चेतनशील बनता है, विश्वास और आस्था जागृत होती है। भावात्मक पहलू द्वारा उस शक्ति के प्रति प्रेम आत्मसमर्पण तथा निर्भरता की भावना उत्पन्न होती है। क्रियात्मक पहलू के अन्तर्गत मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा उस शक्ति को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है, और उसके प्रति क्रियाशील रहता है। धर्म की पूर्णता आस्था, प्रेम क्रिया इन तीनों के अलग-अलग होने से नहीं होती, अपितु इन तीनों के सगठित रूप में निहित होने से होती है। जिस प्रकार मानसिक जीवन की व्याख्या केवल ज्ञान

या भाव या इच्छा द्वारा नहीं की जा सकती उसी प्रकार धार्मिक चेतना की व्याख्या केवल भावना, ज्ञान और क्रिया द्वारा नहीं की जा सकती है। बल्कि ये तीनो तत्व जब सगठित रूप मे प्रकट होते है तभी धार्मिक चेतना अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है। इन तीनो विशेषताओ द्वारा धार्मिक चेतना के प्रकट होने के कारण ही धर्म को "सम्पूर्ण मानव मन की प्रतिक्रिया" कहा गया है। इसमे मानव जीवन के समस्त पहलू सन्निहित रहते है।

धार्मिक चेतना के वास्तविक स्वरूप को जान लेने के पश्चात् यह ज्ञात हो जाता है कि जिस ओर धार्मिक चेतना उन्मुख होती है उसका प्रमुख विषय धार्मिक ज्ञान और परम सत्य की प्राप्ति करना है। उसका समस्त प्रयास और धार्मिक जीवन जीने की आकाक्षा इसी परम सत्य की प्राप्ति के लिए होता है। मनुष्य की आध्यात्मिक वृत्ति बिना आध्यात्मिक सत्ता की प्राप्ति के सतुष्ट नहीं हो सकती। यह धार्मिक ज्ञान और परमसत्ता की प्राप्ति केवल वैयक्तिक स्तर पर प्रकट नहीं होती, बल्कि इसे सामूहिक या सामाजिक स्तर पर व्यक्ति उतारने का प्रयास करता है, तब धर्म का स्वरूप अत्यन्त व्यापक और ग्रहणीय हो जाता है। इसीलिए सच्चा धार्मिक व्यक्ति परम सत्ता का बोध करके कहता है- 'एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। ईश्वर सत्य, शिव, सुन्दर का प्रतीक है। अत यही धार्मिक चेतना का सर्वोच्च मूल्य भी है। इसीलिए ईश्वर को सच्चिदानन्द भी कहा जाता है। विचार से सत्, सकल्प से शिव तथा भावना से सुन्दरम् को प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु इनमे से अकेले किसी का भी महत्व नहीं है अपितु सम्पूर्ण रूप से इनका समन्वयात्मक रूप ही सर्वोच्च विषय है जिससे धार्मिक चेतना प्राप्त की जा सकती है। धार्मिक व्यक्ति सत्य की खोज के लिए स्वानुभूति का अवलम्ब ग्रहण करता है। यह अध्यात्म प्रगाढ भावना से ओत-प्रोत धार्मिक अनुभूति के

रूप मे प्रकट होती है। व्यक्ति अपनी इस अनुभूति से और अपने जीवन मे प्राप्त अनेक घटनाओ के उतार-चढाव तथा विभिन्न वस्तु तत्वो मे साम्य प्राप्त करना चाहता है। अतएव वह धर्म की बौद्धिक, भावात्मक और सकल्पनात्मक व्याख्या भी करता है। उसकी स्वानुभूति जीवन जगत सर्वत्र व्याप्त होती है। इस प्रकार मूल रूप से परम सत्ता के साथ आत्मसात होने की अनुभूति ही आध्यात्मिक अनुभूति है। यह अनुभूति व्यापक होती है, जो सामान्य रूप से सम्पूर्ण जगत मे ईश्वर की सत्ता को व्यक्त करती है। आध्यात्मिक व्यक्ति उस परम् सच्चिदानन्द मे आस्था रखता है तथा उसकी क्रियाओ को इस दृश्यमान जगत के क्रियाकलापो और घटनाओ के साथ एकाकार हुआ देखता है।

(अ) धर्म, दर्शन तथा आध्यात्मिकता

धर्म शब्द सस्कृत की 'धृ' धातु से उत्पन्न हुआ है। 'धृ' का अर्थ है धारण करना अथवा सहारा देना, सहायता करना या सम्हालना। धर्म इस ससार को एक सूत्र मे बाधता है, इसके बिना सम्पूर्ण ससार पृथक-पृथक और अस्त-व्यस्त हो जायेगा। धर्म का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो भी आचरण या तरीका इस मूल सिद्धान्त को व्यक्त करता है वह धर्म कहलता है। अत धार्मिक रीति-रिवाज, मान्यताये और आचरण के निश्चित नियम सहायता, कर्तव्य, परोपकार, कानून के नियम आदि इनमें से प्रत्येक को धर्म के अर्थ मे प्रयोग कर सकते है। संसार की प्रत्येक वस्तुयें एक निश्चित समय पर उत्पन्न और नष्ट होती है। यह क्रिया एक निश्चित नियमानुसार होती है और वह उस केन्द्रीय शक्ति अर्थात् ईश्वर से जुडी हुई है, इसी कारण उत्पत्ति व्यवस्थित ढग से होती है, अन्यथा समस्त ससार अव्यवस्थित हो जाय। यही नियम धर्म कहलाता है। दूसरे, धर्म सत् पर आधारित होता है और सबकी भलाई के लिए है। धर्म

समस्त ससार का आधार है। यह एकत्व की ओर ले जाता है, और इसमे सभी का हित निहित है। कहा भी गया है कि 'यस्य नि श्रेयस्य सिद्धि स धर्म ' अर्थात् जिससे व्यक्ति और समाज का कल्याण हो उसे धर्म कहते है। वैशेषिक दर्शन मे धर्म की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-''यतो अभ्युदय नि श्रेयस् सिद्धि ततो धर्म ।'' अभ्युदय मे आत्मोन्नति सहित समस्त पारलौकिक सिद्धियो और सुखो का अर्थ समाहित है। धर्म वह है जिससे लौकिक और पारलौकिक सभी विभूतियो की प्राप्ति होती है । भारतीय दृष्टि मे धर्म के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज राजनीति और अर्थशास्त्र सब का समावेश हो जाता है। इस अभ्युदय और नि श्रेयस् की सिद्धि के लिए न्यूनाधिक मात्रा मे आचरण की पवित्रता, मानवतावादी उदात्तता और लोकशास्त्र सम्मत विधि निषेधो का पालन आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार 'यत् धारयति स धर्म' जिसे धारण किया जाय वह धर्म है। अपने आचरण, क्रियाकलाप, आपसी व्यवहार आदि मे जो वृत्तियॉ धारण की जाय वे धर्म कहलाती है। जैसे अहिसा, दया, क्षमा, सेवा, परोपकार आदि सद्वृत्तियॉ जो मानव को ऊॅचा उठाती है और उन्नति के शिखर पर ले जाती है। धर्म के स्वरूप की चर्चा मनु स्मृति के एक श्लोक में इस प्रकार है-

धृति , क्षमा, दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह ।
धीविद्या सत्यक्रोधो दशम धर्म लक्षणम् ।।

उपर्युक्त श्लोक मे धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच इन्द्रिय निग्रह, धी विद्या, सत्य और अक्रोध को धर्म के दस लक्षण माने गये है। इन दस लक्षणो को धर्म का प्रमुख आधार स्तम्भ कहा जा सकता है। इनका पालन करने वाला व्यक्ति सच्चे अर्थों में धार्मिक कहलाता है।

धर्म कर्तव्य के रूप मे भी प्रयोग किया जाता है। मनुष्य समाज का सदस्य होता है, समाज के अन्तर्गत वह अपना पालन-पोषण और व्यक्तित्व का विकास करता हुआ उन्नति की ओर अग्रसर होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का अपने समाज के प्रति कुछ कर्तव्य और आभार होता है जिनको पूरा करने के लिए उसे कुछ निर्धारित कार्य करने पडते है। यह क्रिया समाज को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ये कर्तव्य व्यक्ति का आन्तरिक अभ्युत्थान करने के साथ-साथ समाज को आगे बढाने मे सहायक होते है। इसी आधार पर हमारे प्राचीन भारतीय समाज मे वर्णाश्रम धर्म बना। इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ण और जाति के लोग कुछ निर्धारित कार्यों को करने के लिए ही स्वतत्र थे। वे एक दूसरे के कार्यो मे हस्तक्षेप न करके अपनी निश्चित सीमाओ मे अपने कर्तव्यो का पालन करते थे। उदाहरणार्थ ब्राह्मण धार्मिक अनुष्ठान और पूजा पाठ करता था, वैश्य रूपये पैसो का लेखा-जोखा और बही खाता का काम देखता था। शूद्रो को सेवा का कार्य सौपा गया था। ये कार्य विभिन्न वर्णों के व्यवसाय होने के साथ-साथ उनके कर्तव्य भी थे और यही उनका धर्म भी था। क्योकि समाज की दृढता और सुगठिता इसी वर्णाश्रम धर्म पर निर्भर थी। वृहदारण्यक उपनिषद मे इसका उल्लेख मिलता है कि जो क्षत्रिय शासक के रूप मे अपने सुख के लिए अपने पद की शक्तियो का दुरुपयोग करता है उसे धर्म से किस प्रकार नियन्त्रित किया जाय जिससे कि वह अपने कार्यक्षेत्र की सीमाओ से बाहर न जाये। चन्द्रायोग उपनिषद मे भी वर्णाश्रम धर्म और उसके कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है। अत यह कहा जा सकता है कि धर्म और कर्तव्य एक दूसरे पर आधारित हैं, और एक दूसरे से गहराई से जुड़े हैं।

धर्म के अन्तर्गत व्यक्ति ईश्वर की भक्ति से प्रेरित होकर विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान और क्रिया-कलाप करता है तथा स्वय का धर्म निर्धारित करके नियमो-विनियमो के अन्तर्गत ईश्वर की उपासना और उससे सम्बन्धित अनुष्ठान प्रतिपादित करता है। इन्हीं नियमो को वह अपने जीवन मे आत्मसात कर लेता है। उदाहरणार्थ हिन्दू, मुस्लिम, इसाई, सिक्ख, पारसी आदि सभी धर्म किसी न किसी रूप मे ईश्वर को मानते है किन्तु इनकी पूजा, अर्चना पद्धति एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। सभी धर्मों मे ईश्वर के नाम प्रतीक भी अलग-अलग है, उनके विधि, विधान, जीवन का रहन-सहन भी अपने-अपने धर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। यहा तक कि विभिन्न मागलिक उत्सव और अन्य अवसरो जैसे जन्म, विवाह, मृत्यु के सस्कार भी भिन्न-भिन्न तरीको से मनाये जाते है।

इस प्रकार मनुष्य एक ओर तो अपने विचार, भावना, प्रवृत्तियॉ वासनाओ और आवश्यकताओं के सतुलन से अपने बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व को व्यवस्थित करता है, तो दूसरी ओर अपने बन्धुओ के साथ व्यवहार व्यापार, आचार, सम्बन्ध और सम्पर्क को ठीक करके अपने समाज को सगठित करता है और फिर अपनी शक्ति, बुद्धि, प्रतिभा, चक्षुष्मता और सृजनात्मकता के प्रयोग से प्रकृति की कुछ क्रियाओ को नियन्त्रित करता है। यह समन्वय कुछ मान्यताओ और स्थापनाओ पर आधारित होता है जो व्यक्ति के लिए नि सदेह पूर्ण रूप से सत्य होते है तथा जिनमें दृढ आस्था रहती है। किन्तु यदि ये स्थापनाऍ और मान्यताऍ बुद्धि संगत और ज्ञान गर्भित न हो तो ये कठोर और कट्टर दुराग्रहो के साथ रूढ़ और निश्चल अन्धविश्वासों का रूप ले लेती हैं। इस प्रकार ये समन्वय तथा संतुलन स्थापित करने में बाधक होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि ये मान्यताएं नित्य ज्ञान से उद्‌भाषित और तर्क के द्वारा अर्जित हों। तभी इनके

अनुरूप आचरण किया जा सकता है, और व्यवहार मे कुशलता उत्पन्न की जा सकती है। इन्हीं श्रद्धा से सिक्त, कर्म से परिपूर्ण और ज्ञान से समन्वित स्थापनाओ और मान्यताओ के समूह को धर्म कहते है। इसकी बाह्य अभिव्यक्ति मनुष्य के आचारो, उपचारो, कर्तव्यो और दायित्वो, सम्बन्धों और परम्पराओ के रूप मे होती है, जिससे समाज का ढाचा बनता है।

दर्शन का अर्थ है किसी वस्तु को देखने का दृष्टिकोण। दर्शन के अन्तर्गत दार्शनिक व्यक्ति अपनी अनुभूतियो और धारणा के आधार पर विभिन्न मत स्थापित करता है। वह अपनी मान्यताओ के आधार पर ईश्वर की उपासना का ढग निश्चित करता है तथा उसकी सन्निकटता प्राप्ति का मार्ग तय करता है। इस प्रकार दार्शनिक लोग विभिन्न मत-मतान्तरो द्वारा इश्वर के सबध मे अपने विचार स्थापित करते हैं। ईश्वर क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? जीवन और जगत से उसका सम्बन्ध और समस्त दु खो से मुक्ति प्राप्त करने के उपाय आदि निर्धारित करते है। प्रत्येक दार्शनिक अपने ढग से ये धारणा और विचार स्थापित करता है। भारतीय इतिहास मे अनेक विद्वान दार्शनिक उत्पन्न हुए और अनेक दर्शन अस्तित्व मे आये, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि। इन सभी मतो में ईश्वर को अलग-अलग ढंग से निरूपित किया गया है। कहीं तो वह एकेश्वर है, कहीं दो रूपो मे और कहीं अनेक है। कहीं वह शुद्ध सत्य है तो कहीं विशिष्ट। इस प्रकार हम देखते है कि दर्शन का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं होता, अपितु दार्शनिक जो अनुभव करता है तथा जो विचार बनाता है उसके आधार पर एक मान्यता विकसित कर लेता है। यह मान्यता मूलत· उसी दार्शनिक की हो सकती है या फिर एक या अनेक दर्शनों का

समन्वय अथवा अश भी हो सकती है। यही मान्यता एक दर्शन विशेष का रूप धारण कर लेती है।

दर्शन तर्क पर आधारित होता है तथा स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा प्राप्य है। जबकि धर्म भावना या अनुभूति पर आधारित होता है इसीलिए इन दोनो मे उद्देश्य, दृष्टिकोण, विधि और क्रिया की दृष्टि से भिन्नता परिलक्षित होती है, जो निम्नलिखित रूपो मे है-दर्शन विचार प्रधान होता है। यह विज्ञान की भाति किसी वस्तु का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् विश्लेषण और तर्क के द्वारा निर्णय निकालता है, और उस ज्ञान को ग्रहण करता है जबकि धर्म व्यवहार प्रधान है और इसका उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यो को प्राप्त करना है। यद्यपि दर्शन भी आध्यात्मिक मूल्यो का विवेचन और विश्लेषण करता है, किन्तु उसको प्राप्त करने के लिए वह सचेष्ट नही रहता है। धर्म इन आध्यात्मिक मूल्यो को जीवन मे ग्रहण करने की चेष्टा भी करता है। इस प्रकार हम देखते है कि जहा दर्शन सिद्धान्तो की पुष्टि मात्र करता है वहीं धर्म उन सिद्धान्तों को जीवन मे उतारकर सुख-शान्ति की स्थापना करता है।

दर्शन का दृष्टिकोण ज्ञानात्मक और बौद्धिक होता है। वह जीवन और जगत की बौद्धिक व्याख्या करता है। सन्देह से प्रारम्भ कर तर्कपूर्ण ढग से पक्षपात रहित निर्णय पर पहुँचता है। इसके विपरीत धर्म का भावात्मक दृष्टिकोण होता है इसमे तर्क को अधिक महत्व नहीं दिया जाता जितना की श्रद्धा, भक्ति, आशा, निराशा आदि भावनाओं का महत्व है।

दर्शन के अन्तर्गत किसी निष्कर्ष को निकालने के लिए तार्किक विधियों का प्रयोग करते हैं जो कि पूर्णत· विचारात्मक होता है. इस प्रकार यह हमारी

बौद्धिकता की तृप्ति करता है। जबकि धर्म के अन्तर्गत श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और धर्मग्रन्थो पर आश्रित रहकर निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। इस प्रकार धर्म मानव जीवन और चेतना के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक पहलू की तृप्ति करता है।

दर्शन मे आलोचना, विवेचन, विश्लेषण की क्रिया होती है, जो कि विचार या धारणा तक ही सीमित है। किन्तु धर्म की क्रियाए ईश्वर-चिन्तन, प्रार्थना, पूजा-पाठ, स्तुति तथा उपासना पद्धति आदि मे देखी जाती है।

इन विभिन्नताओ के अतिरिक्त कई विषयो मे दर्शन और धर्म मे समानता भी दिखाई देती है, जो इस प्रकार है-

दर्शन और धर्म दोनो का ही लक्ष्य इस विश्व की व्याख्या करना और इसकी सृष्टि के रहस्य को जानना है। इसके लिए दर्शन सैद्धान्तिक रूप से इसकी खोज करता है, जबकि धर्म आध्यात्मिक मूल्यो की खोज द्वारा विश्व की व्याख्या करता है।

दर्शन और धर्म दोनो ही जीव और जगत तथा इस विश्व के सृष्टिकर्ता को महत्व प्रदान करते हैं तथा इससे सबधित प्रश्नो को जानने के लिए उत्सुक होते हैं। ये दोनो ही भौतिक मूल्यो को सर्वप्रमुख महत्व नहीं देते है।

दर्शन और धर्म दोनों का केन्द्रबिन्दु वह परमसत्ता अर्थात् ईश्वर ही है। ये दोनों उस परमसत्ता के साक्षात्कार तथा जीव और जगत से उसके सम्बन्धों के विषय में जिज्ञासु होते हैं। उसे जानने के लिए समान रूप से प्रयत्नशील होते हैं।

इस प्रकार इन दोनो मे केवल भावना तथा विचार का ही अन्तर परिलक्षित होता है दोनों की मजिले एक ही है किन्तु वहा तक पहुँचने के मार्ग भिन्न-भिन्न है।

समस्त दृष्टिकोणो से देखने पर ज्ञात होता है कि धर्म का सम्बन्ध दर्शन से अत्यन्त निकटस्थ और घनिष्ठ है। धर्म का दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक और पूर्ण होता है। मनुष्य के अनुभव का तात्विक एव तथ्यात्मक अर्थ सम्पूर्ण रूप से दर्शन प्राप्त करता है। तथा धर्म के तात्विक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष को दार्शनिक अध्ययन विश्लेषित करते है। धार्मिक अनुभूतियो के स्वरूप, कार्य, मूल्य एव सत्य की खोज के लिए विवेचन और विश्लेषण करना ही धर्म के अन्तर्गत दर्शन का कार्य है।

दर्शन, धर्म और आध्यात्मिकता इन तीनो को एक साथ देखा जा सकता है। एक धार्मिक और दार्शनिक व्यक्ति आध्यात्मिक हो सकता है, किन्तु एक आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह धार्मिक और दार्शनिक भी हो। मनुष्य की चेतना मे निहित तत्व क्रिया की दृष्टि से धर्म और बौद्धिक विवेचन की दृष्टि से दर्शन बन गया। धर्म की भावना, क्रिया तथा चेतना मे निहित तत्वो की दर्शन मीमासा करता है। मनुष्य की भावात्मक और बौद्धिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किये गये प्रयत्नो के द्वारा आध्यात्मिकता की भावना जागृत हुई और धर्म तथा दर्शन की प्रतिष्ठा हुई। धार्मिक व्यक्ति किसी धर्म विशेष के अन्तर्गत उसके नियमों-विधियो तथा परम्पराओ का पालन करता हुआ ईश्वर की पूजा उपासना में सलग्न रहता है। वह अपने धर्म के नियमो और मान्यताओं के अनुसार आचरण करता है, तथा किसी दर्शन विशेष में आस्था रखता हुआ अपना जीवन निर्वाह भी कर सकता है। इस प्रकार एक धर्मपरायण व्यक्ति दार्शनिक और आध्यात्मिक दोनों हो गया। लेकिन एक

आध्यात्मिक व्यक्ति जो ईश्वर मे अपनी आस्था और श्रद्धा रखता है वह किसी धर्म या दर्शन मे स्वय को बाधे या नहीं इसके लिए वह स्वतत्र है। ऐसा आध्यात्मिक व्यक्ति ईश्वर प्रेम मे लीन रहता है, तथा श्रद्धा भक्ति से परिपूर्ण होकर परम सत्ता के साक्षात्कार हेतु ईश्वर की साधना मे सलग्न रहता है। उस आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए किसी दर्शन या सिद्धान्त को मानना आवश्यक नहीं है, वह अपनी इच्छानुसार चाहे तो किसी सिद्धान्त को माने या न माने। सासारिक वस्तुओ के लिए ईश्वरीय सहायता चाहना आध्यात्मिक प्रेरणा का स्थूल रूप ही है, किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है जिनकी ईश्वर के प्रति प्रार्थना बिल्कुल कामनाशून्य होती है। उनका ईश्वर के प्रति प्रेम केवल प्रेम के लिए होता है। वे सृष्टि की भव्यता और विश्व के आश्चर्यमय स्वरूप को देखकर सृष्टिकर्ता के प्रति सहज प्रेम और अन्त प्रेरणा से परिचालित होते है। उस व्यक्ति के भावुक विचारो के पीछे युक्ति ढूढ़ने मे भले ही कठिनाई हो परन्तु उसके स्वय के लिए उसकी भावनाये यथार्थ है। वे उसे आनन्द, शान्ति और शक्ति प्रदान करती है तथा स्वार्थपूर्ण सासारिकता की क्षुद्रता से उसे ऊपर उठा देती है। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक होता है।

मानव मन के लिए आध्यात्मिकता सबसे बडी प्रेरक शक्ति है। जितनी शक्ति हममे आध्यात्मिक आदर्शों पर चलने से आती है उतनी और किसी से नहीं। केवल उपयोगिता के स्तर पर भी पूर्णतया स्वस्थ, नैतिक और अच्छे महान पुरुष इस ससार में हुये हैं, किन्तु ससार को हिला देने वाले लोग जो मानो विश्व में एक महान चुम्बकीय आकर्षण ला देते है, जिनकी आत्मा सैकडो हजारों में कार्यशील है, जिनका जीवन आध्यात्मिक अग्नि से दूसरों को प्रज्वलित कर देता है सदा आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि से ही आविर्भूत होते हैं। उनकी प्रेरक

शक्ति का स्रोत सदा ही धर्म रहा है। चरित्र निर्माण, शिव और महत् की प्राप्ति, स्वय तथा विश्व को शाति की प्राप्ति के निमित्त यही धर्म ही प्रेरक शक्ति है। धर्म को ग्रहणशील होना चाहिए, और ईश्वर सम्बन्धी अपने आदर्शों की भिन्नता के कारण एक दूसरे का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। जब धर्म इतने उदार बन जायेगे तब उनकी कल्याणकारिणी शक्ति सौगुनी अधिक हो जायेगी। धर्मो मे अद्भुत शक्ति है, किन्तु केवल इनकी संकीर्णताओ के कारण अक्सर इनसे कल्याण की अपेक्षा अधिक हानि ही हुई है। अत आज सभी के लिए आध्यात्मिक धर्म की आवश्यकता है।

(आ) साहित्य और जीवन तथा आध्यात्मिकता

भारतवर्ष आध्यात्मिकता का देश है। भारत जब-जब आध्यात्मिकता से विमुख हुआ तब-तब उसकी अवनति हुई और तभी किसी आध्यात्मिक व्यक्ति ने इसे ऊपर उठाया। वेद-उपनिषद के युग से ही भारतीय जीवन की सृजक, धारक-वाहक और उत्कर्ष विधायिका शक्ति आध्यात्मिकता ही रही है। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। यथार्थ आध्यात्मिकता का देशकाल की दृष्टि से भेदाभेद नहीं है। इसी से भारतीय चित्त न जाने किस सुदूर काल से धर्म सहति और मानव मगल की साधना करता आ रहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद मे विश्ववासियो को 'अमृत के पुत्र' रूप में एक एवं अभिन्न होने की बात स्मरण कराई गई है- ''शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः', आ ये धामानि दिव्यानि तस्थु·।'' अर्थात् हे अमृत के पुत्रों!, सुनो, हे दिव्यधामवासी देवगण!। तुम भी सुनो, मैने उस अनादि पुरातन पुरुष को प्राप्त कर लिया है जो समस्त अज्ञान-अधकार और माया के परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्र से छूट सकते हो। दूसरा कोई पथ नहीं है।'' आशा और सांत्वना की इस वाणी ने वैदिक ऋषि को

अत स्फूर्ति प्रदान की और उसने ससार के समक्ष तूर्य स्वर मे इस आनन्द सन्देश की घोषणा की। समस्त धर्म विभिन्न अवस्थाओ और परिस्थितियो मे होते हुए एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इसको ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में लक्षित करके कहा है- (मयि सर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव।।' गीता/७/७) अर्थात् 'प्रत्येक धर्म मे मै मोती की माला के सूत्र की तरह पिरोया हुआ हूँ।' मध्ययुग मे सगुण-निर्गुण पन्थी साधको के आर्विभाव के पूर्व भारतवर्ष की जो आत्मविस्मृति, परम्पराविच्युति शोचनीय अवस्था हुई थी वह विशेष रूप से अविस्मरणीय है। इसका कारण यह था कि मध्यकाल मे पौराणिक हिन्दू धर्म का स्वरूप बहुत विकृत हो गया था। धर्म मे बाह्याडम्बर और पुरोहितो का हस्तक्षेप अधिक बढ जाने के परिणामस्वरूप उसका नैतिक स्तर गिरने लगा। जातिभेद की कठोरता के कारण कुछ वर्णों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। इनसे परित्राण के लिए निर्गुण, सगुण साधकों में कबीर, रैदास, नामदेव, मीरा, नानक दादू, सुन्दरदास, तुलसीदास, सूरदास, रसखान आदि प्रमुख भक्त कवियो ने भारतीय आध्यात्मिकता और धर्म भावना एव मानवमात्र की समानता तथा मानव कल्याण की सहज सुन्दर यथार्थ व्याख्या एव साधनापथ सामने रखा, वह न केवल उपयोगी सिद्ध हुआ अपितु मनुष्य जाति की सुरक्षा एवं मंगल का द्योतक भी बना। आधुनिक काल मे भारत मे अग्रेजी राज्य की स्थापना हो जाने से यूरोपीय धर्म और सस्कृति का प्रसार तेजी से होने लगा। सामाजिक और धार्मिक जीवन मे भी इस समय तक सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, पर्दा प्रथा और जाति भेद जैसी बुराइयॉ जड़े जमा हो चुकी थीं। आर्थिक अवस्था बिगड़ रही थी राजनीतिक क्षेत्र में देश को असफलताओं का सामना करना पड़ रहा था। उस समय समाज में दो वर्ग स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, एक वर्ग वह था जो हर प्रकार के सुधारों का विरोधी था और दूसरा पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में ही अपना कल्याण

देखता था। परन्तु शीघ्र इस नैराश्यपूर्ण वातावरण को दूर करने हेतु तीसरे और अधिक स्वस्थ दृष्टिकोण का उदय हुआ। इसने प्राचीन धर्म सस्कृति को अक्षुण्ण रखकर उसमे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से सामजस्य स्थापित करके पर्याप्त सुधार पर बल दिया। राजाराममोहनराय ने हिन्दू धर्म का अन्य धर्मों से समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मो की मूल एकता को समझाया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सभी के मूल मे मानव धर्म को जानने का प्रयास किया जिसके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित हो सके। गाधी जी ने तो अपने सिद्धान्तो मे इस पर सबसे अधिक बल दिया। अरविन्द, दास, गुप्ता, रानाडे और राधाकृष्णन आदि विद्वान इन्हीं समस्याओं का विवेचन करते हैं। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक पुर्नजागरण आन्दोलन ने भारत के सभी धर्मो मे नवीन चेतना का सचार किया। भारतीयो की उदासीनता को दूर करके उनमे आत्मगौरव का सचार किया। इसके साथ ही अनेक सामाजिक कुप्रथाओ को काफी सीमा तक दूर किया तथा जनता मे राष्ट्रीय चेतना जागृत की। जब हम विश्व इतिहास का मनन करते हैं तो पाते है कि जब-जब किसी राष्ट्र मे ऐसे आध्यात्मिक लोगो की सख्या मे वृद्धि हुई तब-तब उस राष्ट्र का अभ्युदय और उत्थान हुआ। आध्यात्मिकता ही किसी जाति की शक्ति का प्रधान स्रोत है। जिस दिन से इसका ह्रास और भौतिक उत्थान होने लगता है उसी दिन से उस राष्ट्र की मृत्यु प्रारम्भ हो जाती है।

आज भारत तथा विश्व नाना समस्याओ से जर्जरित है। व्यक्ति जीवन और समाज जीवन विभिन्न समस्याओं से गुजर रहा है। मनुष्य व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में शान्ति के लिए हाहाकार कर रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से मनुष्य ने बर्हिप्रकृति से बहुल सम्पदा का आहरण करके ऐहिक

सुख भोग की सामग्री की वृद्धि मे प्रभूत उत्कर्ष दिखाया है। जागतिक सुखभोग की मात्रा मे वृद्धि होने पर भी मनुष्य के मन मे शान्ति नहीं है। मन नाना सशयो से आलोडित है, मन के देवभाव क्षमा, प्रेम, लज्जा, विनय, अहिसा, सतता, सयम आदि सद्गुण आज अन्तर्हित होते जा रहे है। उनके स्थान पर आसुरिक भावो, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिसा, द्वेष आदि ने दखल कर लिया है। केवल बर्हिप्रकृति पर जय करने की अभिलाषा आन्तरिक दृष्टि से मनुष्य को आज दिवालिया बनाती जा रही है। उसने जड जगत मे अभूतपूर्व उन्नति की है, किन्तु अपने ऊपर उसका स्वामित्व नहीं है। तब भी भीतर की आसुरी शक्ति पर जय करने की आवश्यकता वह अनुभव नहीं करता। केवल बर्हिप्रकृति को ही अपने वशीभूत कर लेने पर मन की शान्ति नहीं मिलती। यन्त्र मनुष्य के स्थूल सुखभोग की सामग्री जुटा सकता है, पर मन को शान्ति की खुराक नहीं दे सकता। इसीलिए बर्हिप्रकृति पर जय करने के साथ-साथ अन्त प्रकृति पर विजय आवश्यक है। अन्तर की आसुरी शक्ति को पराभूत करके देवभाव की वृद्धि की आवश्यकता है। साथ ही आवश्यकता है मनुष्य के आध्यात्मिक शक्ति के स्फुरण की।

भारत तथा विश्व की विभिन्न समस्याओ का मूल कारण है अन्तर की आध्यात्मिक शक्ति की अवहेलना। पाश्चात्य जगत मे अट्ठारवीं, उन्नीसवीं शताब्दी मे जब विज्ञान के नये-नये आविष्कार होने लगे तब से मनुष्य नवीन दृष्टि से सब कुछ देखने लगा। पुराना जो कुछ था उसे जड़ विज्ञान ने युक्ति की सहायता से चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। शास्त्रानुमोदित किसी भी विषय पर वह सहज विश्वास करना नहीं चाहता। जिन विषयों का अस्तित्व युक्ति अथवा इन्द्रियानुभूति की सहायता से प्रमाणित नहीं किया जा सकता उन सब को कुसंस्कार कह कर

वर्जन किया गया। अभिज्ञता पर आधारित इन्द्रियो के माध्यम से सभी वस्तुओ की सत्यता निर्णीत होने लगी। यद्यपि ज्ञान का यह विचार विज्ञान जगत मे विप्लव लाने के लिए यथेष्ठ था, तो भी आत्मजगत के लिए यह यथेष्ठ नहीं था। क्योकि आत्मजगत मे प्रवेश होता है केवल आत्मसयम, आत्मोत्सर्ग, एव आत्मवचना की सहायता से। जबकि विज्ञानवादी मन अपनी बर्हिमुखी प्रवणता के कारण इतनी प्रशान्ति अर्जित नहीं करता जिसमे केवल सत्य आत्मज्ञान प्रतिफलित हो सके। एकमात्र मानसिक आध्यात्मिकता मे यह शान्ति निहित है। विश्वविख्यात ऐतिहासिक आर्नल्ड टायनवी ने वर्तमान युग के लिए आध्यात्मिकता की प्रयोजनीयता को स्वीकार किया है। उनका कथन है कि- ‘‘आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न अविष्कारो ने देश और काल के व्यवधान को इतना कम कर दिया है कि इस पृथ्वी के विभिन्न जातियो को ऐसे विचित्र मरणास्त्रो से सज्जित किया है, कि वे मुहूर्त मात्र मे एक दूसरे के अस्तित्व को विलुप्त कर सकते है। किन्तु यूरोपीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने हमे एक दूसरे को पहचानना और प्रेम करना नहीं सिखाया। विश्व इतिहास की इस सकटमय घडी मे मानव-जाति की रक्षा का एक मात्र उपाय है ‘भारतवर्ष का पथ’। सम्राट अशोक और महात्मा गाधी का अहिसा का आदर्श, एव श्री रामकृष्ण के ‘‘सर्वधर्म मे अन्तर्धर्म’’ में निहित ऐक्य की भावना ही समग्र मानव जाति को एक परिवार के अग के रूप मे गढ सकती है। पारमाणविक युग मे हमारे आत्म हनन से बचने का एकमात्र पथ श्री रामकृष्ण, गाधी, और अशोक की शिक्षा ही सत्य है, कारण आध्यात्मिक सत्य की वास्तविक उपलब्धि पर यह आधारित है।’’

समष्टिगत रूप से शक्ति और ऐश्वर्य के अन्धानुकरण के फलस्वरूप बीसवीं शताब्दी में दो विश्वयुद्ध हुए जिनका ध्वसात्मक प्रभाव समस्त पृथ्वी पर

कमोवेश रूप मे पडा है। आज इसी एक ही कारण से हम लोग सम्भवत· और भी भयावह और विध्वसी तृतीय विश्व युद्ध की ओर अग्रसर हो रहे है। काम भाव के सम्बन्ध मे आन्तरिक सचेतनता, आलोचना और चिन्तन के फलस्वरूप इस समय हमारे समाज मे दुर्नीति और व्यभिचार का व्यापक अनुप्रवेश हुआ है। बीच-बीच मे उसी का नग्न आत्मप्रकाश देखकर हम अपने भविष्य के विषय मे चितित हो उठते है। हमारे जीवन के मूल्य बोध में कोई परिवर्तन होना उचित है या नही? एव आध्यात्मिकता के सबध मे अधिकाश साधारणजन जितना उदासीन या निष्क्रिय है वैसा रहना उनके लिए समीचीन है या नहीं? इस सम्बन्ध मे गहन चिन्तन का समय आ गया है। हम सभी ससार त्याग कर सन्यासी नहीं हो सकते, सम्भवत उसकी आवश्यकता भी नहीं है, किन्तु सुख-भोग, विलास, ऐश्वर्य प्राप्त करने की एक सीमा हो इतना आवश्यक है। आत्मा की मुक्ति ही हमारे समस्त प्रयासों की सीमा होनी चाहिए। हमे पुन· आध्यात्मिकता को जगाना होगा, जो अध्यात्म विज्ञान कहता है एक परमेश्वर सर्वभूतो मे विद्यमान है। कहा गया है- 'अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो रूप-रूप प्रतिरूप बभूव, एकस्तया सर्वभूतान्तरात्मा रूप रूप प्रतिरूपो वहिश्च। (कठोपनिषद २/२/९) जिस प्रकार अग्नि इस समस्त जगत मे परिव्याप्त होकर विभिन्न आधारो मे भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करती है एव जगत मे सर्वत्र रहकर उसके बाहर भी वह विद्यमान रहती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी सभी जीवों में विभिन्न रूपो मे परिव्याप्त है और उसके बाहर भी है। 'सर्वभूतों को आत्मा में, एव आत्मा को सर्वभूतों मे प्रतिष्ठित देखना' यही है भारत का अध्यात्म विचार अथवा आत्म विचार। इस विद्या का प्रयोजन अपरिहार्य है। हम जगत में साम्य मैत्री आदि बातों की खूब चर्चा करते है, विभिन्न दृष्टियों से समाज सस्कार की चेष्टा करते हैं अनेक सभा समितियों के माध्यम से हम इसकी आलोचना करते हैं किन्तु हमारी दृष्टि केवल भोग के

बण्टन और भोग साम्य पर है। भोग के साम्य की आवश्यकता क्यो है? क्यो हम अपनी सम्पति का हिस्सा सभी को दे? अथवा सभी के साथ बाटकर खाएँ? इस प्रश्न का समाधान क्या है? स्वामी विवेकानन्द कहते है- इसका कारण हम सभी के भीतर है। "जो सभी जगह उसको (ईश्वर को) देखते है एवं सब में उसी भगवान की उपलब्धि करते है वे ही आत्मविद् है, आध्यात्मिक है।" आत्मज्ञान से बलीयान व्यक्ति नवीन दृष्टि से जगत को देखना सीखता है। सासारिक कष्टो से त्रस्त मानव किसी ऐसी शक्ति का अवलम्ब चाहता है जो पूर्ण और समर्थ हो। अत वह सर्वशक्तिमान ईश्वर की ओर उन्मुख होता है। इस प्रकार समस्त कठिनाइयों और दु खो मे समभाव तथा सहज रहकर उनका निराकरण प्राप्त करता है। व्यक्ति जितना आध्यात्मिक होगा उसका अन्त करण स्वच्छ होकर जगत तथा मनुष्यो के प्रति प्रेम सवदेना से परिपूर्ण हो उठेगा। तभी सघात एव सघर्ष का पथ त्याग कर सहानुभूति सहयोगिता के पथ पर समाज अग्रसर हो सकेगा। आध्यात्मिकता मनुष्य की मानसिक और आत्मिक उन्नति, आत्मतोष का एकमात्र सशक्त साधन है।

अध्याय-द्वितीय

भारतीय नवजागरण और आध्यामिकता

अध्याय-२

भारतीय नवजागरण और आध्यात्मिकता

निराला और पन्त के साहित्य क्षेत्र मे आविर्भाव के पूर्व भारतीय समाज मे नवजागरण प्रारम्भ हो चुका था। नवजागरण के प्रमुख मुद्दो ने समाज, राजनीति, साहित्य सभी को प्रभावित किया। जनजागरण का मूल मुद्दा चूँकि मानवतावाद से प्रभावित था। अत इसका प्रमुख बिन्दु आध्यात्मिकता ही है, जो मानवतावादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप नवजागरण आन्दोलन मे परिलक्षित होने लगा था। नवजागरण आन्दोलन की आवश्यकता का अनुभव तब हुआ जब भौतिकवादी ब्रिटिश सस्कृति ने अध्यात्मवादी भारतीय सस्कृति का मार्ग अवरूद्ध कर दिया। उस समय भारतीय समाज परम्पराओ और सामाजिक रूढियो पर अवलम्बित जीवन की बधी-बधाई परिपाटी पर यन्त्रवत चल रहा था। जातीय जीवन ह्रास की चरमसीमा को अतिक्रमित कर रहा था। भारतीय मानस मे अपनी पुरातन गौरवमयी सास्कृतिक उपलब्धि के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। ऐसे जड एव सुप्त भारतीय जीवन मे इसाई मिशनरी एक उत्क्राति और नई चेतना लेकर उपस्थित हुये। अग्रेज देश का सचालन सूत्र पा गये थे और इसाई मिशनरी विजयी के रूप में अधिकृत भारतीय धर्म और समाज की खिल्ली उडा रहे थे, भारतीय जनता में स्वधर्म और समाज के प्रति वितृष्णा के भाव भर रहे थे। अग्रेजी शिक्षित मध्यवर्ग की उत्पत्ति औद्योगिक सभ्यता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। शासक वर्ग के आधुनिक आचार-विचार, रहन-सहन के प्रति भारतीय मध्यम वर्ग में लोभ का भाव इसाइयों की दिनचर्या, रहन-सहन के स्तर एव सोचने के ढंग से यह वर्ग इतना अभिभूत था कि अपने को भारतीय कहने में भी लज्जा से गड़

जाता था। भारतीय सस्कृति के उज्जवलतम गौरवपूर्ण मूल स्रोत से यह वर्ग पूर्णतया अनभिज्ञ था। पश्चिमी सस्कृति ने भारत की सामाजिक परम्पराओ, धर्म, कला, साहित्य, विचारधारा, वस्त्र, भोजन आदि सभी को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। जो भारतीय संस्कृति सदियो से विभिन्न सस्कृतियो को अपने मे आत्मसात करती हुई चली आ रही थी इस सस्कृति के साथ अपना समन्वय नहीं बना सकी इसका कारण यह था कि भारतीय सस्कृति आध्यात्मिकतावादी थी जबकि अग्रेजी सस्कृति भौतिकवादी। तत्कालीन युगजीवन की सबसे बडी आवश्यकता यही थी कि भारतीय सस्कृति एव समाज की उपलब्धियो की नये जीवन मूल्यो के परिप्रेक्ष्य मे व्याख्या करने वालो का अवतरण हो। अत भारतीय प्रबुद्ध मस्तिष्क ने वैज्ञानिक चितन के परिप्रेक्ष्य मे सामाजिक जड मान्यताओ का पुनर्मूल्याकन करना आवश्यक समझा। इस प्रकार परस्पर विरोधी भाव समूहो के निरन्तर सघर्ष से एक नये दृष्टिकोंण का अभ्युदय हुआ। विचारों का यह आन्दोलन नवजागरण के नाम से जाना गया। जात-पात, छुआछूत, पर्दा प्रथा, बाल वध, बाल विवाह, बहु विवाह, विधवाओं के लिए ब्रह्मचर्य, सती-प्रथा, नारी-शिक्षा का निषेध जैसे रूढ विचारों और अन्ध विश्वासों मे जो भारतीय आत्मा दब गयी थी वह इस नये दृष्टिकोण के कारण उद्‌बुद्ध हो उठी इसी को भारतीय नवजागरण के नाम से जाना जाता है।

अपनी सस्कृति के प्रति आस्थावान भारतीय मनीषियो ने प्रत्येक प्रकार की बेचारगी के शमन हेतु प्रयास किया। इन नवजागरण के सवाहको ने तत्कालीन समाज में परिव्याप्त विविध प्रकार की विसगतियों के शमन हेतु नये मानदण्डो के अन्वेषण की चेष्टा की। धार्मिक, दिवालियापन, रूढियो मे जकड़ा हुआ समाज मनुष्य की मनुष्य के प्रति विद्वेष भावना, नारी के व्यक्तित्व का हल्कापन उद्वेलित करने वाले ऐसे बिन्दु हैं जिन्होनें तत्कालीन नयी जागृति को एक स्वरूप प्रदान

किया। जीवन एव समाज के प्रति एक नयी सोच पैदा हुई। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का महत्व बढा। सर्वरूपेण सम्पन्न होने के बावजूद भी देश की दयनीय स्थिति के विषय मे सोचने का सिलसिला जारी हुआ। इसके साथ ही उन तमाम कारणो का अन्वेषण किया जाने लगा जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज ह्रासोन्मुख हो रहा था। उन पतनशील तत्वो को भी खोजा जाने लगा जिसके द्वारा भारतीय समाज व सस्कृति उत्तरोत्तर विकसित हो सके।

उन्नीसवीं शताब्दी पूरे विश्व के लिए क्रान्ति की शताब्दी रही है। विज्ञान एव बुद्धिवाद ने मनुष्य जाति, सामाजिक सन्दर्भ, तथा धर्म दर्शन को अभिनव दृष्टि से मूल्याकित किया। युग की नवीन मानवकेन्द्री चेतना के पीछे औद्योगिक क्रान्ति, फ्रासीसी-राज्यक्रान्ति वैज्ञानिक विकास और जनतान्त्रिक विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यूरोपीय एव भारतीय सस्कृति के सयोग से भारतीय समाज मे एक नवीन चेतना का उन्मेष हुआ जिससे अनुप्रेरित होकर धर्म एव समाज की मानवीय व्याख्या हुई।

भारत मे प्रारम्भ मे नवजागरण धार्मिक क्षेत्र मे उदय हुआ। इन लोगों का विचार था कि पहले धार्मिक क्रान्ति हो फिर सामाजिक और अन्त मे राजनैतिक तथा आर्थिक। सर्वप्रथम वे आत्मा की उन्नति चाहते थे, क्योकि आत्मिक उन्नति के बिना सामाजिक और राजनैतिक प्रगति सम्भव ही नहीं थी। निम्नलिखित सुधारवादी सगठनों ने नवजागरण की ज्योति जलायी-

(१) **ब्रह्म समाजः-** राजा राममोहन ने २० अगस्त सन् १८२८ को कलकत्ता में ब्रह्म-समाज की स्थापना की। सामाजिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों में ब्रह्म-समाज ने सुधारवादी कार्य किया। धार्मिक, सामाजिक, रूढ़ियों, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद,

अवतारवाद, सतीप्रथा, जाति प्रथा, बहु विवाह आदि का उन्मूलन इसकी बहुत बडी उपलब्धि थी। ध्यातव्य है कि आलोच्य युग मे किसी भी सहृदय मानवतावादी मनीषी के लिये जन-मानस के बीच धरती पर उतरकर उनकी व्यथा को दूर करने का प्रयास ही उस युग का सबसे बडा धार्मिक चिन्तन था। परम्परा-पोषण के समर्थक पुराण-पथियो से धैर्यपूर्वक शास्त्रार्थ करके नये-मूल्यो की स्थापना उस युग की अनिवार्य माग थी। "योरप के सम्पर्क से जैसे-जैसे भारत मे नयी मानवता का जन्म हो रहा था वैसे ही हिन्दू धर्म भी नया रूप ले रहा था। ब्रह्म-समाज इसी अभिनव हिन्दुत्व का एक नया रूप था। इसने मूर्तिपूजा का बहिष्कार किया, अवतारों का खण्डन किया और लोगो का ध्यान उस निराकार, निर्विकार, एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया, जिसका निरूपण वेदान्त मे हुआ है। किन्तु ब्रह्म-समाज की इससे भी बडी विशेषता यह थी कि वह सभी धर्मो के प्रति सहानुभूतिपरक और उदार था।" (दिनकर सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ ५४६)।

राजा राममोहन ने विविध धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन करके उसकी पृष्ठ भूमि में हिन्दू-धर्म की मूल एव विशुद्ध मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया जो औपनिषदिक सत्य पर आधारित थीं। ब्रह्म समाज के प्रभाव से एक ओर तो समाज की कुरीतियों के निवारण का प्रयत्न हुआ, तो दूसरी ओर हिन्दू युवक दूसरे धर्म में जाने से रोक लिए गये। .. . राजा राममोहन राय का ब्रह्म-समाज अध्यात्मिक क्षेत्र में पश्चिम के सामने भारतीय महत्ता की घोषणा थी।" (केशरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत, पृष्ठ २७) राजा राममोहन राय ने मानवतावाद की प्रतिष्ठा का प्रयास किया, विधवा

पुर्नविवाह का समर्थन किया। देश मे आधुनिक प्रवृत्तियो के प्रचार-प्रसार हेतु उन्होने अग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया।

ब्रह्म-समाज के विचारों के प्रचार के लिए मद्रास मे भी कई केन्द्र खोले गये। पजाब में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए दयाल सिह प्रन्यास के तत्वावधान मे दयाल सिह कालेज खोला गया। केशवचन्द्रसेन उन्मुक्त विचारो एव विद्रोही प्रवृत्ति से पूर्ण थे। प्रतिमापूजन एव जाति-पाति को ठोकर मारकर उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया था। उनकी विश्वबन्धुत्व की भावना का ही परिणाम था कि ब्रह्म-समाज मे हिन्दू, मुस्लिम, इसाई आदि सभी धर्मों से सम्बद्ध, प्रार्थनाओ का सग्रह किया गया था एव समय-सयम पर उनका पाठ भी होता था। केशवचन्द्र सेन ने १८८० में अपनी नई सस्था 'नव-विधान' (न्यू डिस्पेन्सेशन) शुरू की। इसका सिद्धान्त ईश्वर का पितृत्व और मनुष्यों का भ्रातृत्व था। वह प्रत्येक प्रकार के आचार और उपचार से मुक्त थी।

(२) **तत्वबोधिनी सभा-** महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने १८३९ मे "तत्वबोधिनी सभा" की स्थापना की। अपने सिद्धान्त के प्रचार हेतु इन्होनें "तत्वबोधिनी पत्रिका" आरम्भ की। धार्मिक शिक्षा के लिए स्कूल खोला। महर्षि देवेन्द्रनाथ आध्यात्मिक अनुभूति से सम्पन्न थे। असीम सत्ता की उन्होनें अनुभूति की थी। धार्मिक वाद-विवाद में, ईश्वर के अस्तित्व के सन्दर्भ में वे तर्क-वितर्क को श्रेयस्कर नहीं मानते थे। उनका हृदय मानवतावादी विचारों से पूर्ण था। उन्होंने समाज सुधार पर विशेष ध्यान दिया। बहुविवाह, बाल विवाह, जाति प्रथा, आदि का विशेष विरोध किया। कालातर में जब ब्रह्म-समाज का विभाजन हुआ तो इन्होंने 'आदि ब्रह्म-समाज' का नेतृत्व किया।

(३) **प्रार्थना सभा-** बगाल के सुधारवादी आन्दोलन का प्रभाव देश के अनेक भागो में भी पडने लगा। चूँकि महाराष्ट्र भी पश्चिमी सस्कृति से ज्यादा प्रभावित था अत वहॉ भी नई चेतना एव नये दृष्टिकोण का विकास स्वाभाविक ही था। बगाल के बाद महाराष्ट्र में सुधारवादी आन्दोलन तेज हुआ। महाराष्ट्र में सुधार आन्दोलन सन् १६४० के आस-पास आरम्भ हुआ। १८३२ में वहॉ दर्पण (साप्ताहिक) एव दिग्दर्शन (मासिक) पत्र मे विधवा विवाह, दलितोद्धार इत्यादि का प्रचार किया गया। किन्तु महाराष्ट्र मे व्यापक रूप से सुधारवादी आन्दोलन का प्रचार तब हुआ जब केशवचन्द्र सेन १८६४ मे बम्बई गये, उनकी प्रेरणा से १६६७ मे बम्बई में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख नेता थे- न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे और एन० जी० चन्द्रावरकर। समाज-सुधार के क्षेत्र में प्रार्थना सभा ने चार प्रमुख कार्य किया-

१. जाति-पांति का विरोध किया।

२ पुरूषों तथा स्त्रियों की विवाह की आयु को बढाने पर बल दिया गया।

३ विधवा-पुनर्विवाह को बल दिया।

४. स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

इसके साथ ही इस सभा ने दलित जाति-मण्डल, समाज-सेवा संघ एवं ढक्कन शिक्षा समिति की स्थापना की।

(४) **आर्य समाज-** उत्तरी भारत में धार्मिक उद्‌बोधन का अग्रदूत आर्य-समाज था। इसके संस्थापक दयानन्द सरस्वती थे। १८७४ ई० में इलाहाबाद में अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' पूरी की। १८७५ ई० में १० अप्रैल को बम्बई में आर्य-समाज की स्थापना किया। आर्य समाज ने वेदों को प्रमुख स्थान दिया।

इसके द्वारा विदेशियो के आक्रमण से अपनी रक्षा करने में असमर्थ तथा विभक्त अशक्त एव अपनी उत्तम भाषा तथा साहित्य से अनभिज्ञ हिन्दुओं को उनकी महानता, प्राचीन गरिमा से परिचित कराने और राष्ट्र में आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक जागरण लाने का महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध हुआ। आर्य-समाज द्वारा मूर्ति-पूजा और जटिल कर्मकाण्ड की विकार-ग्रस्त अन्ध रूढियो मे उलझे हुये परम्पराबद्ध धर्म-विधान के स्थान पर मूल-वैदिक धर्म का प्रचार किया गया, और सबके लिए स्वीकार्य एक निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया गया। सबसे बढकर आर्य समाज द्वारा प्रचारित मानव मात्र की एकता के सिद्धान्त और शुद्धि समारोह आदि से विशाल एव प्रगतिशील मानवीय भावनाओं की प्रतिष्ठा हुई। शुद्धि प्रथा के अनुसार जो व्यक्ति इस्लाम या ईसाई धर्म अपना चुका था वह हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर लिया जाता था। यह निश्चित रूप से एक उदार कार्य था। स्वामी दयानन्द सरस्वती हिन्दू वैदिक धर्म में ही पूर्ण सत्य को मानते थे। उन्होंने पुन· "वेदों की ओर चलो" का नारा दिया। हिन्दू धर्म को वे विश्व-धर्म मानते थे। हिन्दू धर्म के दरवाजे समूची मानव जाति के लिए खुले थे। धार्मिक सुधार आन्दोलन के रूप में मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, तत्र-मंत्र, एव कर्मकाण्ड की कटु आलोचना की। एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा द्वारा अनके मत-मतान्तरों के झगडो को मिटाने का कार्य और एकता के बीज का वपन किया। विधवा-विवाह का समर्थन, बहु-विवाह-बाल विवाह का विरोध, अछूतोद्धार स्त्रीशिक्षा एवं अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया।

स्वामी दयानन्द जी ने फ्रांस की क्रांति से उत्पन्न स्वतन्त्रता, समानता और विश्व-बन्धुत्व के विचारों का अधार वेदो को बताया। वे एक ऊँचे मानव धर्म के प्रवर्तक थे। उन्होंने लिखा "मैं उस धर्म को मानता हूँ जो

सार्वभौम और सब पर लागू होने वाले सिद्धान्तो पर आधारित है जिन्हे मानव-जाति हमेशा से मानती आई है, और हमेशा मानती रहेगी।'' (सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६७७)। यह धर्म एक उच्च विश्वजनीन नैतिक आधार पर टिका है। स्वामी जी ने स्वदेशी राज्य की भावना जगाने के लिए विदेशी शासन की अनुपयुक्तता से जनता को परिचित कराया। वस्तुत स्वामी जी का उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से भारत को स्वाधीन बनाना था और समग्र राष्ट्र मे एक सामान्य धर्म और सस्कृति की स्थापना द्वारा राष्ट्रीयता तथा जातीयता की प्रवृत्ति को जगाना था। स्वामी दयानन्द के समस्त सुधारात्मक प्रयत्न सास्कृतिक एव भारतीय आधार लिए हुये थे और उनका दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक था। राष्ट्र मे सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टि से एकता की भावना भरने का श्रेय आर्य समाज को ही है।

(५) **रामकृष्ण मिशन-** नवजागरण के प्रचार-प्रसार मे रामकृष्ण मिशन का अत्यधिक योगदान है। हिन्दू धर्म को एक नवीन सामाजिक उद्देश्य प्रदान करने का श्रेय ''रामकृष्ण मिशन'' को ही है। विभिन्न धर्मों मे सामन्जस्य स्थापित करने का कार्य भी इसी मिशन ने सम्पादित किया। चूँकि स्वामी रामकृष्ण परमहस स्वय अपने जीवन मे वैष्णव, शाक्त, इस्लाम एव इसाई धर्मो का प्रयोग कर चुके थे, इसीलिए रामकृष्ण मिशन के सस्थापक स्वामी विवेकानन्द ने भी सभी-धर्मो को बराबर सम्मान दिया। उन्होंने मानव सेवा को ही ईश्वर की सच्ची सेवा माना। मानव सेवा को ही उन्होंने सच्चा धर्म माना। उनके अनुसार ''भूखे व्यक्ति को धर्म की बात कहना ईश्वर तथा मानवता का उपहास है।'' (आधुनिक भारतीय इतिहास- एक नवीन मूल्यांकनः- बी० एल० ग्रोवर, पृ० ३७७)।

परमहस के आविर्भाव से विश्व को विदित हुआ कि धार्मिक सत्य केवल बौद्धिक अनुमान की वस्तु नहीं है, वे प्रत्यक्ष अनुभव के विषय है और उनके समक्ष ससार की समस्त तृष्णाये नगण्य हैं। परमहस के द्वारा धर्म समन्वय का व्यावहारिक रूप प्रचारित हुआ जो विश्व मानवतावाद पर आधारित था और जिसके कारण लोग परम्पराबद्ध रूढियो का परित्याग कर स्वस्थ वायु मण्डल मे श्वास लेने लगे। स्वामी परमहस के कारण राष्ट्र में आध्यामिकता का अद्‌भुत प्रचार हो सका, वे सभी धर्मो को अपना बनाकर हिन्दुत्व की रक्षा मे सफल सिद्ध हुए। श्री रामकृष्ण की साधना पूर्ण आध्यात्मिक अनुभूतियो को व्यावहारिक रूप प्रदान कर उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। वास्तव मे यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं है कि भारतीय सास्कृतिक जागरण की केन्द्र-प्रेरणा के दायित्व-निर्वाह और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भारत के अध्यात्म की विजय-स्थापना का श्रेय रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द को ही है। धर्म को आत्मिक अनुभव की वस्तु बनाकर सहजानुभूति एव आत्मिक अध्यात्म का उपदेश श्री रामकृष्ण ने दिया तो उनकी भाववादी साधना और अद्वैत दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप अर्थात्-दूसरे शब्दो में व्यावहारिक वेदान्त का विश्वव्यापी मानववादी आन्दोलन स्वामी विवेकानन्द ने प्रस्तुत किया। सारे ससार मे उन्होने यह स्थापना की कि सर्वांग-सम्पूर्ण जीवन के समुचित विकास के लिए आध्यात्मिक और भौतिक पक्षों का सम्यक् विकास समान रूप से आवश्यक है। हिन्दू धर्म को नवजीवन से अनुप्राणित करने, पाश्चात्य देशो को वेदान्त के सत्य से अवगत कराने तथा विश्व-विख्यात 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना कर "आत्मनो मोक्षाय, जगद्धिताय च" के उच्च्व आदर्श के अनुसार सेवा के महत्व को प्रचारित करने का महत्वपूर्ण कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया। (विवेकानन्द चरित श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार; वक्तव्य, पृ० १)। स्वामी जी ने आध्यात्मिकता के साथ ही राष्ट्रीयता

का प्रचार-प्रसार भारत की जनता के अन्तस्थल मे किया। वेद को उन्होने समस्त अध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत मानकर अद्वैतवाद को कर्म जीवन मे परिणत किया। (भारत मे विवेकानन्द, अनु निराला पृ० ४५८)। उन्होने अपने मत का प्रचार न केवल भारत अपितु विदेशो मे भी किया। एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा मे विश्वास सर्वधर्म सम्भाव पर बल दिया। उन्होने बौद्धिकता और विज्ञान को अपनाकर निर्मित होने वाले युगानुरूप मानव स्वरूप को उपस्थित किया। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की अनुभूति के साथ प्रजातन्त्रीय आदर्श उससे समन्वित समानता, बधुत्व के प्रतिमान और विज्ञान के पश्चिम के प्रदेय को भारतीय आध्यात्मिकता के साथ युग के अनुरूप सम्मिलित कर पूर्व और पश्चिम के योग द्वारा विश्व मानव की उदात्ततम परिकल्पना विवेकानन्द ने प्रस्तुत किया। उन्होने तत्कालीन मानव मे विद्यमान जाति, प्रान्त, राष्ट्र आदि की सकीर्ण प्रवृत्तियो का खण्डन कर विश्व-बन्धुत्व की स्थापना का सफल प्रयास किया।

६) **थियोसोफिकल सभा-** प्राचीन भारतीय गौरव के प्रति न केवल भारतीय नागरिक व समाज सुधारक आस्थावान थे अपितु विदेशी नागरिक भी प्राचीन भारतीय सस्कृति से प्रभावित हुए। जिसके परिणामस्वरूप थियोसेफिकल सभा की स्थापना सन् १८८२ में अड्यार मद्रास मे हुई। जब श्रीमती एनी बेसेट इसकी अध्यक्षा बनी तो इसकी क्रियाशीलता मे दुगुना विकास हुआ इसने समाज मे मातृ-भावना का प्रचार, प्राचीन धर्म दर्शन और विज्ञान के अध्ययन में सहयोग, सभी धर्मों के महत्व को स्वीकार करना तथा स्त्री-पुरूष की समानता पर बल दिया इस प्रकार प्राचीन भारतीय गौरव के प्रति आदर तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना से भारतीय नवजागरण को अत्यधिक बल मिला।

श्रीमती एनी बेसेट के सिद्धान्तो का गम्भीर प्रभाव भारतीय शिक्षित मध्यम वर्ग की राष्ट्रीय और आध्यात्मिक प्रवृत्तियो पर पडा। एक ईश्वर और एक निष्ठा को विभिन्न धर्मो मे देखने का प्रयास थियेोसोफिकल सभा ने किया और इस धार्मिक आन्दोलन के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन को भी समन्वित कर सशक्त सर्वमानववादी प्रवृत्तियो को राष्ट्र मे जगाने के कार्य मे भी उसे अपार सफलता मिली। श्रीमती एनी बेसेट ने बताया कि भारत मे आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्ति की इतनी प्रचुरता है कि वह समस्त विश्व को इसका दान दे सकता है। भारतीय जनता के लिए उन्होने स्वकीय सस्कृति एव साहित्य का अध्ययन अनिवार्य बताया तथा पाश्चात्य दार्शनिक विचारो के प्रति प्रलुब्ध भारतीय जनता को आत्म-जागरण का सदेश दिया। श्रीमती एनी बेसेंट के हृदय मे हिन्दु-धर्म के प्रचार-प्रसार की बहुत बडी साध थी, और वह इससे इतनी अधिक अभिभूत थीं कि कह पडी थीं- "चालीस-वर्षों के सुगम्भीर चितन के बाद मै कह रही हूॅ कि विश्व के सभी धर्मों मे हिन्दू धर्म से बढकर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एव आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है।"[1] उन्होने यह भी कहा था कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। जिसकी जिस धर्म में आस्था हो उस पर उसे अटल रहना चाहिए। धर्म बाह्य आडम्बर नहीं है, आत्मा की वस्तु है।

साहित्य पर प्रभाव

राजनीतिक, धार्मिक एव सामाजिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप देश के वातावरण में पर्याप्त परिवर्तन आ गया था। अग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतवासियों के विचारों में उदारता आने लगी, एक ओर पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को हीन समझने लगे और पश्चिम का

---

१. सस्कृति के चार अध्याय-दिनकर, पृ० ५७२

अन्धानुकरण करने मात्र से सन्तुष्ट रहने लगे, तो दूसरी ओर उदात्त तथा दृढ व्यक्तित्व के देश भक्तो को इस शिक्षा के कारण अपने प्राचीन साहित्य, सस्कृति, दर्शन, भाषा एव शिक्षा पर गर्व का अनुभव हुआ, साथ ही अपनी तथा राष्ट्र की वास्तविक दशा की अनुभूति भी होने लगी। वे समाज मे व्याप्त रूढिप्रियता, पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण, धार्मिक मिथ्याचार, राष्ट्र की निर्धनता पराधीनता आदि से व्यथित हुए। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तथा शैक्षणिक समस्याओ के प्रति जागरूक हुए और तब वे राष्ट्र के युगानुकूल नव-निर्माण के महत्तम कार्य मे सलग्न हुए। इन सभी विचारो और भावनाओ की अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य मे भी होने लगी।

बंग साहित्य ने सर्वप्रथम अपने युग की सवेदनाओ को अपने मे समेटा। अत नवजागरणकालीन बोध सर्वप्रथम बंगला साहित्य मे ही देखने को मिलता है। ईश्वरचन्द्र की कविताओ मे बग देश की सस्कृति एवं सभ्यता के प्रति गम्भीर श्रद्धाभाव दिखाई देता है तथा रगलाल बनर्जी राजपूत इतिहास के आख्यानो के माध्यम से देश भक्ति की भावना को व्यंजित करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक में देवेन्द्रनाथ ठाकुर के हृदय मे मातृभाषा एव देश के प्रति उत्कट प्रेम दिखाई पडा। बकिमचन्द्र चटर्जी ने हिन्दू धर्म की बौद्धिक और सतुलित व्याख्या की तथा भारतीय सस्कृति के प्रति रागमय होते हुए पाश्चात्य फैशन से अभिभूत मध्यवर्गीय शिक्षितों के प्रति आक्रोश एवं तिरस्कार की भावना व्यंजित की, उनके द्वारा संपादित बहुचर्चित पत्र 'बगदर्शन' ने राष्ट्रीयता के विकास मे अनन्य योग दिया। 'कृष्ण चरित्र' एवं धर्म तत्व आदि ग्रन्थो में हिन्दू धर्म-तत्व की उन्होने मानवीय एवं सर्वथा नवीन वैज्ञानिक विवेचना की है। 'आनन्दमठ', 'देवी चौधरानी' और 'सीताराम' उपन्यासों में हिन्दू धर्म-दर्शन को संवादों एवं चरित्रों के माध्यम से संतुलित रूप में उन्होनें विवेचित किया है। 'दुर्गेश नन्दिनी', 'कपाल-कुण्डला' एवं मृणाल आदि कृतियों में जातीय स्वरों की मुखर अभिव्यक्ति

हुई है। माइकेलमधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध' महाकाव्य मे लोक-प्रसिद्ध राम के प्रति भक्ति-भाव को तिलाजलि देकर मानवतावादी दृष्टि को प्रतिष्ठित करते हुए राम और रावण को व्यक्तिवादी धरातल प्रदान किया गया है। 'चतुर्दश पदावली' मे देशभक्ति एव पत्रात्मक गीतिकाव्य 'वीरागना' मे रूढि और परम्परा के विरूद्ध नवजागरण की चेतना से सवेदित नारी का विद्रोह व्यक्त हुआ है।

इसकें बाद परवर्ती कवियो मे हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय, शिवनाथ शास्त्री, नवीनचन्द्र सेन, ईशान चन्द्र वन्द्योपाध्याय इत्यादि कवियो ने नवजागरण का सदेश अपनी रचनाओ के माध्यम से प्रेषित किया। कालान्तर मे रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस प्रवृत्ति का पूर्ण निर्वाह किया। नारी जागरण की चेतना, सामाजिक और धार्मिक रूढियो की जडता, स्वदेश प्रेम, अन्तर्राष्ट्रीयता एव आध्यात्मिक चितन को समग्रता मे रवीन्द्र ने वाणी दी है। 'गीताजलि' द्वारा भारतीय जीवन को भौतिक सप्रदायवाद से अलग कर सूक्ष्म मानववाद की ओर प्रेरित किया और मानव की आत्मा की सूक्ष्मानुभूतियो मे परिव्याप्त रहने वाले ''पूर्णत्व'' को महत्वपूर्ण स्थान दिया। राजा राममोहनराय ने भारतीयधर्म की असारता को दूर करने का प्रयास किया।

माइकेल मधुसूदन दत्त, बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ टैगोर इत्यादि प्रतिभाशाली साहित्यकारों के स्पर्श से नवजागरण सम्पूर्ण भारत में ग्राह्य होता जा रहा था। शरतचन्द्र के जन्म (१८७६ ई० १६३८ ई०) तक नवजागरण समग्र रूप से पूरे देश में फैल गया।

बग साहित्य ने जब अपने रूप विधान में नवजागरण को पूरी तरह से समेट लिया तो उस प्रवृत्ति से भारत की अन्य भाषाओं का साहित्य अर्थात्

मराठी, तेलुगू, तमिल, मलयालम सभी प्रभावित हुये। उससे हिन्दी साहित्य भी वचित नहीं रह सका। हिन्दी मे नवजागरण का प्रवेश द्वार बना भारतेन्दू बाबू हरिशचन्द्र का साहित्य। युगबोध एव सामयिक चेतना से भारतेन्दु का सृजन समग्रता मे अनुप्राणित रहा है। राष्ट्रीय जागरण के आकांक्षी भारतेन्दु युगीन साहित्यकार भारतीय सस्कृति के प्रति अत्यन्त मोहासक्त थे। भारतेन्दु की भारत-दुर्दशा मे हिन्दू समाज के बाह्याडम्बरो तथा धार्मिक विकृतियो पर मर्मपूर्ण व्यग्य किये है। नारी जागरण के लिए भारतेन्दु ने 'बाल बोधिनी' पत्रिका का सम्पादन किया था। इनकी रचनाओ मे एक ओर तो विदेशी सभ्यता मे रगे नवयुवको पर करारा व्यग्य किया जाता था और दूसरी ओर रूढिवादियो का उपहास भी। श्रृगारिकता, रीतिबद्धता तथा दरबारीपन में कमी आ गयी एव राष्ट्रप्रेम, भाषा-प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम इन साहित्यकारों के मन मे पैदा हुआ। इस समय राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, हास्य-व्यंग्य, भक्तिपरक, समस्यापूर्ति इत्यादि विषयो से सम्बन्धित साहित्य की सृष्टि हुई, इसके साथ ही बग साहित्य के अनुवाद भी हुए।

द्विवेदी युग मे ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली की प्रतिष्ठा नव-जागरण की ही अभिव्यक्ति है। उनके प्रोत्साहन प्रवर्धन से उसमें सुधारात्मक एव औपदेशिक उद्देश्यों से प्रेरित निबन्ध-कविताओं की परम्परा चल पडी। राष्ट्रीयता का वास्तविक ओज द्विवेदी युगीन कविता में ही देखने को मिलता है। इस समय के कवियों की कृतियों में राष्ट्र की दयनीय दशा का मात्र चित्रण नहीं, अपितु पीड़ित मानव के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन भी हुआ है। नवयुग की मांग थी कि आत्मसंयम, मानवतावादी चेतना और आत्म-विसर्जन की क्षमता रखने वाले महत्तम व्यक्तित्व राष्ट्रीय जीवन में आ करके राष्ट्र को आत्ममुक्ति का संदेश दें।

परिणामस्वरूप 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और राधा अपनी प्रणय आकाक्षा का उत्सर्ग कर जातीय-चेतना के उत्थान के अभिलाषी हैं। राधा ने अपने प्रेम की बलि राष्ट्र के लिए चढा दी तथा दीनदुखियो के प्रति सहानुभूतिमयी बनीं। नवजागरण की चेतना के क्रम मे द्विवेदीयुगीन कवियों ने अभिशप्त नारी-जीवन के सन्दर्भ में सहानुभूति पूर्ण ढंग से विचार किया और सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ को वाणी दी।

सन् १६२० के आस-पास भारतवर्ष में राष्ट्रीयता अपने उदान्त स्वरूप मे पल्लवित हो रही थी और जन जीवन केवल प्रवृत्तिमूलक सत्ता तक सीमित न रहकर गम्भीर सास्कृतिक मूल्यों मे अपने को ढालता जा रहा था, उस समय छायावादी कवियों की रचनाए राष्ट्रीय एव सास्कृतिक पीठिका पर विरचित होने लगी। इस युग की रहस्यवादी प्रवृत्तियो के प्रेरणास्रोतो के रूप मे साख्य, वेदान्त, शैवागम, बौद्ध दर्शन, सूफी दर्शन आदि को स्वीकार किया जा सकता है यद्यपि अनुकरण से अधिक मौलिक व्यक्तित्वानुभूति के संयोग से एक विशुद्ध आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण हुआ। वस्तुत· छायावादी युग की इन विशेषताओं का समग्र स्वरूप अथवा अज्ञात की जिज्ञासा से अनुप्राणित रहस्यवाद चित्रण की सूक्ष्मता से ओत-प्रोत छायावाद तथा जीवन और साहित्य की प्राचीन रूढियें से मुक्ति की कामना से पल्लवित स्वच्छन्दतावाद का सम्पूर्ण समाकलन स्वछन्दतावादी कवित्रय प्रसाद, निराला, तथा पंत की कृतियो मे देखा जा सकता है। पाश्चात्य सम्पर्क एव ज्ञान के विस्तार से सामाजिक रूढिवादी कट्टरता क्रमश शिथिल पडने लगी थी, क्रमिक रूप से जातीयता, राष्ट्रीयता, एव अन्तर्राष्ट्रीयता का विस्तार हुआ। सम्प्रदायवादी सकीर्णता के स्थान पर सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विचारधारा गम्भीर स्थान लेने लगी। यथार्थ चेतना से अनुप्राणित होकर जीवनगत प्रवृत्तियों के आधारभूत सूक्ष्म तत्वों की ओर उन्मुखता क्रमश· राष्ट्र में व्याप्त होने लगी।

नवजागरण आन्दोलन की उपलब्धियां

नवजागरण काल मे सास्कृतिक एव धार्मिक प्रतिनिधियों के व्यक्तित्व एव उपलब्धियों की समीक्षा करने से जो महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आते है उनमे सर्वप्रथम पूरे युग जीवन को मूल्यांकित करने वाली बौद्धिक चिन्तन पर आधृत मानवीय दृष्टि की प्रतिष्ठा है। उस युग मे शास्त्रीय मान्यता एवं धार्मिक विधि निषेधो के स्थान पर स्वानुभूत सत्य और आत्मचितन को प्रतिष्ठा मिली। धार्मिक कट्टरता एव सामाजिक बन्धन ढीले पडे। वर्ण-व्यवस्था, जाति-भेद, अस्पृश्यता, शूद्र, एवं नारी जाति के प्रति परपरित मानसिकता में तीव्र परिवर्तन हुये, समानता एव भ्रातृत्व की भावना को बल मिला। प्रत्येक सास्कृतिक उन्नायक ने धर्म को मानवहित के सन्दर्भ मे विश्लेषित किया। धर्म को अनुभूति का विषय बनाया गया। विविध परम्पराओ का मूल्याकन युगबोध के सन्दर्भ मे किया गया।

ध्यातव्य है कि धर्मप्राण भारतीय समाज इहलौकिक मूल्यों में विश्वास रखने वाले यूरोपीय समाज की भांति सकीर्ण व्यक्तिवादी चेतना से सचालित नहीं हो सकता था। नवजागरणकाल की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कल्पना आध्यात्मिक मूल्यों के सन्दर्भ में हुई। गाधी जी की राजनीतिक अवधारणा का धार्मिक चेतना से पुष्ट होना इसी बात का प्रमाण है। नवजागरण की इस चेतना का तत्कालीन भारतीय साहित्य एव साहित्यकारों की मनोभूमि पर क्रान्तिकारी प्रभाव पडा, और वस्तुजगत को देखने की नवीन उदात्त दृष्टि का जन्म हुआ।

इस युग विवेचन के सन्दर्भ में निराला और पन्त दोनों कवियो की रचनाओं के मूल में समस्त जीर्ण रूढ़ियों के विरोध में जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता की मांग है, विशुद्ध सात्विक भावोन्मेष के कारण करुणा या प्रेम के आधार पर स्थित मानवतावादी आदर्शो की प्रतिष्ठा है, युगीन जीवन की विषमता,

पीडा, दु ख एव दैन्य से व्यथित भावुक हृदय की वेदना तथा तज्जनित भविष्य की सुख-शाति की कामना के आदर्श है। राष्ट्रीय तथा सास्कृतिक पुनरुत्थान के साथ विश्वमानवतावाद की उदात्ततम विचारधारा के सप्रसारण की कामना है, यथार्थ के प्रति जागरूक कलाकार की सजीव आदर्शवादी मान्यताओ की स्वीकृति है, नवीन जनवादी आदर्शों की स्थापना के साथ आध्यात्मिक अथवा अद्वैतवादी भूमिका पर सर्वमानववादी प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा है और नये युग के अनुरूप मानव मानव के बाह्य एव आन्तरिक जीवन के स्वस्थ अभ्युत्थान के लिए आवश्यक नयी मूल्य चेतनाओ की अभिव्यजना है, जीवन के सामाजिक तथा नैतिक कर्मपक्षो की स्वीकृति है अर्थात् आस्था एव निष्ठा पर आधारित भारतीय सास्कृतिक जीवन की पुन स्थापना करने का प्रयास है।

अध्याय-तृतीय

निराला के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत एवं उनसे प्रभावित उनका काव्य

अध्याय ३

निराला के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत एवं उनसे प्रभावित उनका काव्य

(अ) रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द

निराला के काव्य के प्रमुख आध्यात्मिक प्रेरणास्रोत श्रीराम कृष्ण परमहस, विवेकानन्द का विचार दर्शन रहा है, जिसका सर्वाधिक व्यापक गहन और स्थायी प्रभाव उनके काव्य, व्यक्तित्व पर पड़ा है। समत्व भाव तथा प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित ज्ञान अथवा मुक्ति का द्योतक वेदान्त दर्शन अथवा साधनानुभूत अद्वैतानुभव जो मनुष्य को केन्द्र मे रखकर व्यवहार पक्ष की नीतिपरक शिक्षा भी देता है, निराला की भावना और चिन्तन का पाथेय रहा है। उनके जीवन, व्यक्तित्व एव साहित्य मे सर्वत्र इस विचारधारा के प्रभाव के यथेष्ट पुष्ट प्रमाण मिलते है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला ने इस अद्वैत दर्शन को ज्यो का त्यों स्वीकार न कर उसे अपनी प्रवृत्तियों एवं अभिरुचियों के अनुरूप अपने ढंग से आत्मसात किया और उसकी अभिनव व्याख्या प्रस्तुत की।

उम्र के बत्तीस साल तक कलकत्ता और बंगाल में रह चुकने के कारण परमहस श्री रामकृष्णदेव तथा स्वामी विवेकानन्द के साहित्य और उनके विचार दर्शन से निराला अपरिचित नहीं थे। निराला जी के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के निर्माण में 'समन्वय' पत्र का और काव्य के उनके स्वच्छन्द प्रयोगों की प्रयोग स्थली के रूप में 'मतवाला' पत्र विशेष उल्लेखनीय है। रामकृष्ण परमहंस की भावसाधना तथा स्वामी विवेकानन्द के वेदान्ती अद्वैतवाद, शक्तिसाधना एवं करुणा का जाग्रत स्वरूप निराला में पाया जाता है उसका कारण 'रामकृष्ण

मिशन' के पत्र 'समन्वय' के सम्पादक के रूप मे उनका घनिष्ठ सपर्क ही है। आध्यात्मिकता एव वेदान्त की व्यावहारिकता के प्रति निराला जी की अप्रतिम आस्था उनके व्यक्तित्व के औदात्य की एक विशिष्टता है। इसके निर्माण का श्रेय 'समन्वय' पत्र एव मिशन को है। जीवन से विरक्त हुये बिना उदात्ततम आध्यात्मवादी दशा मे स्थित रहकर समस्त प्राणियो की सेवा करने का महान उपदेश देनेवाली स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक अद्वैतवाद का दार्शनिक आधार उनकी कृतियो से 'समन्वय' के संपादकत्व काल मे मिशन के परिचय द्वारा प्राप्त हुआ। निराला जी की रचनाओं मे अद्वैत दर्शन की जो गम्भीर छाप पायी जाती है और उनकी महती काव्य शक्ति के रूप मे दार्शनिक चेतना जो सिद्ध हुई है उसकी आधारभूमि 'समन्वय' ही है।

अपने साहित्य के उन्मेष काल मे ही बगाल मे रहते हुए निराला ने श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द पर कतिपय निबन्ध 'समन्वय' के लिये लिखे थे। इस अवधि मे इनके व्याख्यानो, प्रवचनो और कविताओ के अनुवाद भी उन्होंने किये थे, जो 'समन्वय' और 'मतवाला' मे प्रकाशित हुए। लखनऊ और प्रयाग में रहते हुये भी लेख और अनुवाद के काम का यह क्रम सर्वथा भग नहीं हुआ था। यह समग्र सामग्री श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द के प्रति निराला की अतुल श्रद्धा और स्नेह भक्ति का परिचय देती है। प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से निराला के मानस से उनकी सम्बद्धता का प्रमाण भी हमें यही प्राप्त होता है।

समन्वय और मतवाला के लिए काम करते हुए निराला ने कुल मिलाकर छह निबन्ध श्री रामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द तथा अपने दीक्षा गुरू स्वामी सारदानन्द पर लिखे जो 'समन्वय' के प्रथम आठ वर्षो में समय-समय पर प्रकाशित हुए। लेख के 'तकाजे' के साथ 'समन्वय' नाम के सुन्दरपत्र के अपने

पास आने और उसमें 'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' शीर्षक लेख लिखने का उल्लेख स्वय निराला ने किया है।[1]

स्वामी विवेकानन्द पर 'निराला' का एक मात्र सुदीर्घ निबन्ध 'वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्द' आठवे वर्ष के दूसरे अक मे निकला। स्वतन्त्र रूप से स्वामी जी पर न लिखने पर भी श्री रामकृष्ण देव पर लिखे लेखो मे उनका उल्लेख यत्र-तत्र सर्वत्र ही हुआ है।

'समन्वय से अलग हो 'मतवाला' में जाने के उपरान्त भी निरन्तर 'निराला' की मौलिक रचनायें लेख और अनुवाद आदि 'समन्वय' में प्रकाशित होते रहे।

सन् १६२२-२३ मे धारावाहिक रूप से इसमे निराला कृत श्री रामकृष्णवचनामृत का अनुवाद निकला, यद्यपि अनुवादक के रूप मे निराला का नाम इसमे नहीं दिया गया था।

विवेकानन्द के भारतीय व्याख्यानों का अंग्रेजी से अनुवाद भी उन्होंने बाद मे किया था। उनकी परिव्राजक (भ्रमण-कथा) तथा "राजयोग" का अनुवाद भी निराला ने किया था। राजयोग के प्रारम्भिक सात अध्याय ही 'निराला' द्वारा अनुदित हैं, पातंजल योग सूत्र का अनुवाद उन्होंने नहीं किया।[2] ये सभी अनुवाद श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर से प्रकाशित हुए हैं।

मतवाला-काल में ही 'निराला' ने स्वामी विवेकानन्द की बगला कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया। ये अनुवाद 'समन्वय' और 'मतवाला' में प्रकाशित हुए। 'निराला' ने स्वामी विवेकानन्द की पाच बगला कविताओं का अनुवाद किया,

---

१ चतुरी चमार, पृष्ठ ५३
२ राजयोग, पृ० १.११०

जो 'समन्वय' मे प्रकाशित है। पहली अनुदित और प्रकाशित रचना 'गाता हूॅ गीत मै तुम्हे ही सुनाने को'[१] (गाई गीत शुनाते तोमाय) है, जो सवत् १६८० मे प्रथम अक मे छपी।

इस विशालकाय रचना का अन्तिम अश ३१ मई १६२४ के 'मतवाला' की चालीसवीं सख्या मे भी निकला था। 'समन्वय' के अगले दूसरे अक मे स्वामी जी की दूसरी रचना का अनुवाद समाधि[२] (प्रलय वा गभीर समाधि) आठ पंक्तियो का प्रकाशित हुआ। स्वामी विवेकानन्द की सुविख्यात रचना 'नाचुक ताहाते श्यामा' का अनुवाद 'नाचे उस पर श्यामा'[३] भी निराला ने किया। अनुदित यह तीसरी रचना 'समन्वय' के तीसरे वर्ष के छठे अक मे निकली थी। २८ जून १६२४ के मतवाला की चौवालीसवीं सख्या में भी प्रकाशित हुई।

स्वामी विवेकानन्द की दो अन्य रचनाओं 'सखार प्रति' और 'सागर वक्ष' का अनुवाद निराला ने 'सखा के प्रति' और 'सागर के वक्ष पर' किया था, जो क्रमश 'समन्वय' मे छठे वर्ष के तीसरे अक[४] और आठवे वर्ष के आठवे अक सवत् १६८३ और १६८६ में प्रकाशित हुआ। ये सभी अनुवाद निराला ने बगाल में रहते हुए किये थे। श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर से प्रकाशित 'कवितावली' पुस्तक मे ये सभी अनुवाद सकलित है। 'सृष्टि' 'शिवसंगीत १' 'शिवसंगीत २' तथा 'रामकृष्ण आरात्रिक' विवेकानन्द की इन चार अन्य रचनाओं का अनुवाद भी 'निराला' ने किया था, इसका संकेत भी पुस्तक में है। ये अनुवाद किसी पत्र में प्रकाशित नहीं हुए थे।

---

१ समन्वय, वर्ष ३, अंक १ पृ० ३४ -३८ 'मतवाला' पृ० ७४६

२ समाधि पृ० ५४-५५, गीत-गुज, द्वितीय सस्करण, पृ० ६२

३. समन्वय, पृ० २६४-२६८, मतवाला, पृ० ८४३

४ समन्वय, पृ० १०६-१११

बगाल छोडकर लखनऊ चले आने पर 'सुधा' में काम करते हुए भी 'निराला ने रामकृष्ण, स्वामी सारादानन्द और श्री रामकृष्ण मिशन पर लेख लिखे।

'श्री देव रामकृष्ण परमहंस' लखनऊ मे लिखा उनका पहला निबन्ध था, जो 'माधुरी' के मार्च ३२ अंक मे निकला।[1] प्रमुखत उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाला यह लेख इस तथ्य का द्योतक है कि 'निराला' ने श्री रामकृष्ण विवेकानन्द की मात्र विचारधारा से ही प्रेरणा नहीं ली, अपितु उनके जीवन का भी गहरा प्रभाव उन पर पडा था। 'स्वामी सारदानन्द महाराज और मै सारदानन्द पर उनका दूसरा लेख 'सुधा' के नवम्बर ३३ मे प्रकाशित हुआ। मिशन के साधुओ के चमत्कारिक प्रभाव का उल्लेख इसमे निराला ने किया है। सन् १६३२ में लिखे 'अर्थ' लेख मे भी स्वामी सारदानन्द का प्रसग आया है। 'श्री रामकृष्ण मिशन (लखनऊ), मिशन पर 'निराला' का प्रथम परिचयात्मक निबन्ध इस श्रृखला की अन्तिम कडी है। यह लेख 'माधुरी' के अक्टूबर ३५ के अक में छपा था।[2] इस लेख के बाद 'निराला' ने स्वतत्र रूप में कोई मौलिक लेख नहीं लिखा, परन्तु कुछ मौलिक कवितायें और अनुवाद अवश्य इसके बाद मिलते हैं। लखनऊ मे रहते हुये 'निराला' रामकृष्ण मिशन के कार्यकलापो और उत्सवो में सक्रिय भाग लेते थे, उसके पुस्तकालय में पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तक आदि भी देते रहते थे।[3] मिशन से उनकी घनिष्ठता का प्रमाण इससे भी मिलता है।

लखनऊ प्रवास की कालावधि में ही 'निराला' ने 'सेवा प्रारम्भ'[4] कविता में मिशन के सेवा कार्य पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि सेवा की प्रेरणा स्वामी

---

१ सग्रह, पृ० ३२
२ माधुरी डॉ० रामविलास शर्मा पृ० ४०
३ 'निराला' डॉ० रामविलास शर्मा पृ० ४०
४. 'अनामिका' पृ० १७४

अखण्डानन्द जी से स्वामी विवेकानन्द जी को मिली थी। सन् ३७ के अन्त मे लिखी इस रचना के उपरान्त काल क्रम की दृष्टि से सन् ४३ मे लिखी 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज'[1] कविता का स्थान आता है। 'सुधा' मे प्रकाशित स्वामी सारदानन्द पर लिखे निबन्ध और 'भक्त और भगवान' कथा मे इसकी घटनाओ का उल्लेख वे पहले ही कर चुके थे। सन् ४६ मे निकले संग्रह 'नए पत्ते' में निराला की एक कविता 'युगावतार श्री रामकृष्णदेव के प्रति'[2] भी थी। समन्वयकालीन श्रद्धा और भक्ति का स्वर ही यहॉ भी विद्यमान है। नए पत्ते मे ही स्वामी विवेकानन्द की दो अग्रेजी कविताओ के अनुवाद .'चौथी जुलाई के प्रति' और 'काली माता ' भी सकलित हैं, जो सर्वप्रथम 'देशदूत' के १० और १७ सितम्बर ४४ ई० के अको में प्रकाशित हुये थे।[3] अग्रेजी से अनुदित ये दोनो रचनाये बाद की ही प्रतीत होती है, क्योंकि एक तो पहले की अनुदित सभी कविताये बगला की थीं, और दूसरे यदि उनका अनुवाद 'निराला' ने उसी समय किया होता तो अवश्य ही अन्य अनुदित रचनाओं के साथ उनका भी प्रकाशन अथवा उल्लेख मिलता। 'नए पत्ते' के बाद श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द अथवा मिशन सम्बन्धी एक भी रचना, लेख अथवा अनुवाद हमे नहीं मिलते।

'समन्वय', 'सुधा', 'माधुरी' में प्रकाशित यह सभी सामग्री मिशन और उसके सन्यासियों से निराला के घनिष्ठ सम्बन्ध के साथ उनकी विचारधारा और जीवन से सतत प्रेरणा लेने की विज्ञप्ति है। श्री देव रामकृष्ण और उनके प्रिय शिष्य विवेकानन्द के प्रति 'निराला' के विचार और भावना का परिचय भी इन रचनाओं के द्वारा प्राप्त होता है।

---

१ अणिमा, पृ० ६८

२ 'नए पत्ते, पृ० ७९

३ देशदूत, पृ० ५ नए पत्ते, पृ० ८१, ८३।

श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव उनकी आध्यात्मिक परम्परा की सानुभूतिक उपलब्धि 'निराला' को अपने दीक्षागुरू स्वामी सारदानन्द से प्राप्त हुई। निराला ने लिखा है कि सन्यास और महाविद्या का अर्थ भी उन्हे स्वामी जी से ही मालूम हुआ।[1]

दार्शनिकता की प्रबलमात्रा, नास्तिक एव शंकित चित्तवृत्ति तथा पूर्वार्जित सस्कार अथवा धूपछांव की सार्थकता के समान आस्तिकता, और प्रबल विरोधी शक्ति की स्थिति समन्वय काल में निराला मे थी। इसी समय उन्होने स्वामी सारदानन्द मे ब्रह्मभाव और जीवनमुक्त महापुरुष का दर्शन किया था।[2]

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल से ही निराला की काव्य-प्रेरणा का प्रमुख स्रोत वेदान्त दर्शन रहा है, इस सत्य की स्वीकृति के साथ यह भी स्मरणीय है कि उनमे विद्रोही भावना प्रबल थी। वेदान्त दर्शन के प्रति निराला का दृष्टिकोण मूलत विद्रोही न होकर सशयात्मक था, अर्थात् इस विचार-श्रृखला को वे अपूर्ण समझते थे। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द की भाति वेदान्त की पूर्ण और नितान्त एकान्त स्वीकृति भी 'निराला' में नहीं है, और न ही उसके प्रति उनका विद्रोह ही सतत् गतिशील है। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार वस्तुत अद्वैतवाद का पल्ला 'निराला' ने बडे ही तर्कसम्मत ढंग से पकड़ा है।[3] उसे अपने ढग से आत्मसात करते हुए निराला ने अपनी दर्शन और भावमूलक प्रवृत्तियों के अनुरूप जिनका स्वामी विवेकानन्द से कोई प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष विरोध नहीं था- ज्ञान और भाव की उभयनिष्ठ भूमिकाओं पर उसकी परिपूर्णता को चरितार्थ किया है। वेदान्त को विचार अथवा ज्ञानाश्रित कहकर 'निराला' ने उसके सृष्टि तक की विशद व्याख्या करते हुए राजयोग नहीं वरन् ज्ञानयोग को

---

१ 'चतुरी चमार', पृ० ५३, सग्रह, पृ० ६७-६८

२ 'चतुरी चमार', पृ० ५४, ५५, ७६

३ नया साहित्य-२, दिसम्बर ४५, पृ० ४४

उसकी प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम कहा है, साथ ही भाव को केन्द्र मे प्रतिष्ठित कर प्रेमाश्रित भक्ति और कर्म द्वारा अद्वैतानुभव की सिद्धि तथा मातृभाव से शक्तिपूजा का विधान भी उन्होने किया है। सिद्धान्तत अपनी दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण विचारात्मक भूमि पर ज्ञानयोग की साधना यद्यपि 'निराला' ने की है, तथापि अपनी अतिशय भावात्मकता के कारण जीवन और उसकी कर्म भूमि मे प्रेममय भक्तिमार्ग ही वस्तुत उनका अभीष्ट रहा है। यहीं विवेकानन्द से उनकी भिन्नता का प्रमुख कारण और उनकी विशिष्टता भी निहित है।

केवल एक ही सत् की सत्ता को मानने के कारण श्री रामकृष्ण विवेकानन्द की अद्वैत भूमि मे किसी भी प्रकार की द्विधा अथवा विरोध को स्थान नहीं है। 'निराला' जहा विशुद्ध दर्शन की भूमि पर सचरण करते है, विचार अथवा ज्ञान के आश्रय से वेदान्तिक सत्य अथवा मुक्ति ही उनका लक्ष्य है। परन्तु श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द के विपरीत उन्होनें सृष्टि में प्रगति का निर्णय करने वाले विरोधी गुणो की स्थिति को भी स्वीकार किया है।[1] स्वामी जी से भिन्न, वेदान्त को 'निराला' ने व्यवहार में केवल ज्ञानयोग न बनाकर उसे एक तरह का भावयोग बना दिया था। यही तथ्य उनके विद्रोही दृष्टिकोण को भी अग्रसर करने वाला था।

निराला की अनेक विचार-प्रधान दार्शनिक कविताओं में अद्वैतवादी दर्शन का विवेचन हुआ है जिन्हें अधिकांशतः 'परिमल', 'गीतिका' तथा 'तुलसीदास' में और यत्र तत्र 'अनामिका' और 'बेला' में देखा जा सकता है। आत्मा और परमात्मा के मध्य अद्वैतानुभूति अद्वैती विचारधारा से अनुप्राणित मानवतावादी सिद्धान्त, भेद में अभेद की स्वीकृति माया विचार आदि का बौद्धिक विवेचन कलात्मक सौन्दर्य के साथ विश्व के प्रत्येक कम्पन में ब्रह्मसत्ता की अनुभूति करने वाले कवि निराला ने अनेक कविताओं में किया है।

---

१. सग्रह, पृ० ७१-७२

अद्वैती साधक की जिज्ञासा इस कविता मे प्रकट होती है-

> ''तुम हो अखिल विश्व में, या यह अखिल विश्व है तुममें,
>
> अथवा
>
> अखिल विश्व तुम एक यद्यपि देख रहा हूॅ तुममे भेद अनेक?
>
> . ...
>
> पाया हाय न अब तक इसका भेद, सुलझी नहीं ग्रन्थि मेरी,
>
> कुछ मिटा न खेद।''[१]

और "तुम तुग हिमालय श्रृग और चचल सुर सरिता"[२] द्वैताश्रित अद्वयानुभूति और आध्यात्मिक तन्मयावस्था की चरमानुभूति की बेला मे "अह ब्रह्माऽस्मि" की तात्विक स्वीकृति, "केवल मै केवल मै, केवल मै, केवल मै, केवल ज्ञान"[३] द्वारा अभिव्यजित होती है। दार्शनिक रचनाओ में उल्लेखनीय है, "माया"[४], "गीत"[५], "कण"[६], "जुही की कली"[७], "जागृति मे सुप्ति थी"[८], "शेफालिका"[९], "पचवटी प्रसग"[१०], "जागरण"[११], "बाहर मै कर दिया गया हूॅ, भीतर पर भर दिया गया हूॅ"[१२], "मृत्यु है जहॉ, क्या वहॉ विजय करती है क्षिति जीवन का क्षय"[१३], "क्या दु:ख दूर कर दे बन्धन, यह पाशव पाश और क्रन्दन"[१४] इत्यादि।

---

१ निराला, परिमल कण, पृ० १४५
२ निराला, तुम और मैं, पृ० ५८
३ निराला, बसन्त समीर, पृ० ६५
४ वही, पृ० ६२
५ वही, पृ० ८०
६ वही, पृ० १४५
७ वही, पृ० १६५
८ वही, पृ० १६८
९ वही, पृ० १७०
१०. वही, पृ० २३१
११ वही, पृ० २४१
१२ निराला, बेला, पृ० ४३
१३ वही, पृ० ४८
१४. वही, पृ० ४६

निराला जी की चिन्तनपरक दार्शनिक रचनाओ के अतिरिक्त अनेक ऐसी रचनाए भी है जिनमे ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप से आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति का सुमधुर आख्यान है, ऐसी कविताए 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका' मे विद्यमान है। इन कविताओ मे बौद्धिक दार्शनिकता भावनात्मक रहस्यवाद का रूप लेकर आती है और इनमे रहस्यवादी साधक की तीनो दशाओ जिज्ञासा, विरह, मिलन का भावना परक इतिहास प्रस्तुत है।

जिज्ञासा का आयाम

कैसी बजीबीन? सजी मैं दिन-दीन।
हृदय मे कौन जो छेडता बासुरी?
हुई ज्योत्सनामयी अखिल मायापुरी
लीन स्वर-सलिल में मैं बन रही मीन।[1]

विरह का आयाम-

कब से मैं पथ देख रही, प्रिय, उर न तुम्हारे रेख रही प्रिय!
. .. .
प्रथम पलक खुलते ही देखा, चरण चिन्ह, नूतन पथ-रेखा,
उडी जलद-जीवन को केका, क्या अब निष्फल सफल सही प्रिय?[2]

मिलन का आयाम-

"नयनो का नयनो से बन्धन, कॉपे थर-थर-थर-थर युगतन"[3]

निराला जी की रहस्यवादी कविताओ में चिंतन तथा भावतरलता का, आध्यात्मिकता तथा रागात्मकता का संश्लिष्ट रूप दर्शनीय है।

---

१ निराला, गीतिका, पृ० १०४
२. वही. प० ४१

अद्वैत दर्शन जीव जगत माया ब्रह्म आदि की विवेचना

निराला जी के काव्य में आध्यात्मिक वर्णनो और, चिन्तन का प्राधान्य है फिर भी उनकी अनेक कविताये ऐसी है जिनमे रहस्यवादी की जिज्ञासा, मिलन की आतुरता तादात्म्य की आनन्दानुभूति आद्योपान्त परिलक्षित होती है। परोक्ष रहस्य सत्ता उनके काव्य मे सर्वत्र व्यजित होती है। इस दृश्य जगत के अन्तराल मे कवि किसी अज्ञात सत्ता का अनुभव करता है; परन्तु ज्ञान नहीं होता कि वह कौन है।

कवि जिज्ञासु है-

“कौन तम के पार? (रे कह)
अखिल पल के स्रोत जल-जग
गगन घन-घन धार (रे कह)”

ऐसी मूक जिज्ञासा का भाव रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना जाता है। निराला जी की रहस्यमयी अनुभूतियॉ दार्शनिक जिज्ञासा तथा माधुर्य भावना पर आधारित है।

उस सूक्ष्म चेतना के प्रति जिज्ञासु रहस्यवादी के मन में विश्वास जागृत होता है। क्रमश· उस अज्ञात के प्रति प्रेम का जागरण होता है, परन्तु प्रियतम अज्ञात और अप्राप्त है। विकल आकुलता आत्मा को व्यथित करती है। उस विरह की बेला में वह, “नयन झरते, प्राणधन को स्मरण करते”[1] रहती है। पर वह मिलता नहीं है। उस समय न केवल कवि वरन् सारी सृष्टि प्राणप्रिय परमतत्व के प्रेम में विरह के कारण व्यथित है। तब उस विवशता में आत्मा चिल्ला उठती हैं,

---

१. निराला - गीतिका, पृ० ५२

"कितने बार पुकारा खोल दो द्वार बेचारा।
मै बहुत दूर का थका हुआ चल दुखकर भ्रमपथ रूका हुआ
आश्रय दो आश्रम वासिनी मेरी हो तुम्हीं सहारा।"[१]

मायावृत्त सुषुप्त आत्मा को जब ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है उस समय के आनन्द की स्थिति अनिर्वचनीय है। अज्ञान के आवरण हट जाने पर आत्म-ब्रह्म-ऐक्य का जो मधुर वातावरण उपस्थित होता है उसे प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से बडे सुन्दर ढग से निम्नलिखित गीत में अभिव्यक्त किया गया है,

"गयी निशा वह, हॅसी दिशाए, खुले सरोरुह जगे अचेतन,
बही समीरण जुडा नयन-मन, उडा तुम्हारा प्रकाश केतन।।"[२]

व्यक्त ससार से असतुष्ट कवि हृदय अव्यक्त रहस्य सत्ता का अनुभव करता है, उससे आत्मिक परिचय होता है और तब उसे पाने की कामना जाग उठती है। तब कहता है-

"हमें जाना है जग के पार"[३]

कण-कण में परमसत्ता का भान होता है, जगत के समस्त रूपो मे उसकी छवि उसका प्रेम व्याप्त है।

"जिधर देखिये श्याम विराजे, श्याम कुंज वन, यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन वारिद गाजे, श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम हैं
श्याम सुरभि अचल दल साजे।"[४]

निरालाजी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति प्रबल है। इस कारण वे बाह्य वस्तु प्रधान प्रसंगो में भी रहस्यवाद की उद्भावना करते हैं। इसका सुन्दर उदाहरण

---

१ वही, पृ० ६३
२. वही, पृ० ६१
३ निराला, परिमल, पृ० ८०
४. निराला, गीतगुंज-गीत १२

उनका काव्य तुलसीदास है। तुलसीदास को प्रकृति के भीतर उस सत्य का ब्रह्मतत्व का रहस्यपूर्ण आभास मिलते ही उनका अन्तर शून्य के स्तर पर स्तर पार करते उर्ध्वगामी होता है। तुलसीदास को प्रकृति मे रहस्यमयी सत्ता का जो आभास मिलता है वह इस प्रकार वर्णित है -

> ''केवल विस्मित मन, चिन्त्य नयन,
> परिचित कुछ भूला, ज्यों प्रिय जन,
> ज्यों दूर दृष्टि को धूमिल तनतट-रेखा
> हो मध्य तरंगा कुल सागर, निःशब्द स्वप्न सस्कारागर
> जल मे अस्फुट छवि, छायाधर, यों देखा।''[1]

यहॉ निराला जी का रूप साधनात्मक रहस्यवादी का है जिसके मूल मे भारतीय दर्शन की आनन्दावस्था है। इस सम्बन्ध मे श्री धनजय वर्मा कहते है,- ''कवि मन ऊपर उठता हुआ केवल शून्य देखता है जिसमे धुए का समुद्र घूमता है। चन्द्र और तारे उसमे डूबते से है, क्या ऊपर है क्या नीचे, यह भान नहीं होता। समस्त सीमाओ का अवसान होता है और आनन्द की अवस्था मे समस्त द्वन्द्व मिट जाते हैं, ... तुलसीदास मे आनन्दवाद की यह अवस्था शुद्ध भावमूलक है।''[2] इसी कारण चिन्तनमूलक दर्शन के स्थान पर निराला जी का रहस्यवाद भावमूलक, पर साधनात्मक रहस्यवाद की कोटि में आता है।

यह स्पष्ट है कि निराला अद्वैतवादी दार्शनिक हैं। उनके काव्य का सुदृढ़ आधार उनका दार्शनिक स्वरूप ही है। यदि उन्होनें ब्रह्म और जीव के अविभाज्य सम्बन्ध को ''जागरण'' कविता में दार्शनिक चिन्तक के रूप में प्रकट किया है तो उसी को काव्यात्मक एवं रहस्यवादी स्वरूप मे ''तुम और मै'' शीर्षक वाले गीत

---

१ निराला, तुलसीदास- पद १५

२. श्री धनंजय वर्मा- निराला, काव्य और व्यक्तित्व- पृ० १६७, १६८

मे प्रतिपादित किया है। इसमे उन्होने आध्यात्मिक अद्वैतवाद का प्रकाशन बहुत ही कलात्मक ढग से किया है।

> "तुम तुग हिमालय श्रृग, और मैं चचल गति सुर सरिता।
> तुम विमल हृदय- उच्छ्वास, और मैं कात कामिनी कविता।
> . .. .
> तुम कर पल्लव झकृत सितार, मैं व्याकुल विरह रागिनी।"

यहॉ पहले मायोपाधि सहित आत्मा और शुद्ध ब्रह्म के मध्य द्वैतता का आभास कराते हुए तत्पश्चात् दोनो की अद्वैतता का प्रतिपादन किया गया है ऊपरी दृष्टि से हिमालय-गगा, हृदयोच्छवास कविता- सितार-रागिनी मे द्वैतता अवश्य है, किन्तु तत्विक दृष्टि से उनमे अभिन्नता है। इस प्रकार आत्मन और ब्रह्म के अंशांशी भाव वाले अद्वैत दर्शन को निराला जी ने काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। चिन्तन का विषय यहॉ अनुभूति का विषय बन गया है। इसी कारण यहॉ निराला जी का दार्शनिक रहस्यवादी स्वरूप निखर उठा है।

निराला जी भौतिक श्रृंगार के माध्यम से आध्यात्मिक या अलौकिक श्रृंगार की गरिमा का प्रतिपादन करते है। सामान्य वस्तु-जगत के अन्तराल मे एक असामान्य दीप्ति की अनुभूति उनको प्राप्त होती हे। इसका ज्वलन्त प्रमाण है उनका गीत "जूही की कली"। वृन्त पर जूही की कली की सुप्त अवस्था, विश्वव्यापक पवन का स्पर्श, प्रिय सुख की अनुभूति, कली का चकित होकर देखना, प्रिय को निकट पाकर आत्मलीन हो जाना इत्यादि स्थितियों के कलात्मक प्रतिपादन में मुक्त लौकिक श्रृंगार का चित्रण अवश्य प्राप्त होता है, किन्तु अद्वैतवादी निराला जी की कला में आकर वह अलौकिक श्रृगार का रूप ग्रहण कर लेता है। मोह वृन्त में सुप्त मुकुलित आत्मा का (समीम) सर्वव्याप्त असीम ब्रह्म का स्पर्श पाते ही तन्मय हो जाना एवं क्षुद्रता त्यागकर विराट ही बन जाना।

इस सत्य को प्रतीको के द्वारा बडी स्पष्टता के साथ विवृत किया गया है। प्रकृति के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म के रागात्मक सबन्ध का रहस्यमयी शैली मे सुन्दर ढग से "जूही की कली" मे कलापूर्ण विवेचन हुआ है।

"विजन वन वल्लरी पर सोती थी सुहाग भरी"

(माया वृन्त आत्मा)

"पवन उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुज लता-पुजो को पार कर,
पहुँचा जहाँ उसने की केलि,
कली खिली साथ।"
(ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति और आत्मा का खिल जाना)
"हेर प्यारे को सेज पास, नम्रमुखी हँसी,
खिली खेल रग प्यारे सग।"[1]

(तन्मयता-आत्मन् और ब्रह्म् का एकीकरण)

निराला में रहस्यवाद के नाना रूपों के होते हुए भी यह स्पष्ट है कि उन सब की भूमिका के रूप में उनका अद्वैतवादी दर्शन ही विद्यमान है। यहाँ इस सम्बन्ध मे आचार्य बाजपेयी जी का यह कथन विशेष रूप से दृष्टव्य हैं, "निराला जी में पूर्ण मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ उच्चकोटि का दार्शनिक अनुबन्ध है। अतएव उनके गीत भी मानव-जीवन के प्रवाह से बिखरे हुए, फिर प्रकाश से चमकते हुए हैं ...। परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से उनके गीत सज्जित हैं ...। निराला जी के काव्य का मेरूदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकांश पदों में मानवीय जीवन के ही चित्र है सही, किन्तु वे सबके सब रहस्यानुभूति से अनुरंजित हैं।"[2]

निराला मूलतः आध्यामपरक मानवतावादी तथा अद्वैती कवि हैं।

---

१ निराला- परिमल- जूही की कली- पृ० १६५
२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी- हिन्दी साहित्यः- बीसवीं शताब्दी- पृ० १४७

अद्वैत दर्शन वेदान्त का प्रभाव

जीव वस्तुत· ब्रह्म स्वरूप है, पर अज्ञान के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूला हुआ है और वह इस जगत मे ब्रह्म को पाने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार अपनी ही देह की सुगध से भ्रमित मृग उसे पाने की इच्छा से वनो मे भागता फिरता है-

"पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहॉ और नादान?
कहीं भी नहीं सत्य का रूप,
अखिल जग एक अन्धतम कूप,
उर्मि घृणित रे, मृत्यु महान्,
खोजता कहॉ यहॉ नादान।"[1]

माया ईश्वर की शक्ति है और ईश्वर से अभिन्न है। माया को अविद्या या अज्ञान भी कहते है। इसके दो कार्य हैं- जगत के आधार, ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को छिपा देना और उसे ससार के रूप में आभासित करना।[2] निराला भी जगत को माया जन्य मानते हैं। वे भी जगत की सत्ता को प्रतिभासिक स्वीकार करते हैं-

'व्यष्टि औ' समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम-
माया जिसे कहते हैं।
जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई
'व्यष्टि औ' समष्टि में समाया वही एक रूप,
चिद्घन आनन्द-कन्द।[3]

---

१. निराला- गीतिका, पृ० २७
२ भारतीय दर्शन, पृ० २३७-२३८
३. निराला, पंचवटी-प्रसंग

अद्वैत वेदान्तियो के अनुसार आत्मा का बधन अविद्या या अज्ञानवश होता है, अत अज्ञान के दूर हो जाने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। आत्मज्ञान ही मुक्ति का साधन है। मोक्ष प्राप्ति को वेदान्ती भ्रमनिवारण का ही एक रूप मानते है। आत्मा जो अपने ब्रह्मस्वरूप को विस्मृत कर देती हैं, ज्ञान प्राप्त होने पर अपने स्वरूप को पहचान लेती है।

निराला ने इस दृष्टिकोण को निम्नलिखित पंक्तियों मे प्रकट किया है। अज्ञान के निवारित हो जाने से जीव को भ्रम-खेद से मुक्ति मिल जाती है उसे दिव्यानुभव होता है-

'देखता है स्पष्ट तब,
उसके अहकार में समाया है जीव-जग,
होता है निश्चय ज्ञान-
व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है,
देखता है, सृष्टि-स्थित प्रलय का
कारण-कार्य भी है वही'
उसकी ही इच्छा है रचना चातुर्य में
पालन संहार में।
अस्तु भाई, हैं वे सब प्रकृति के गुण
सच है, तब प्रकृति उसे सर्वशक्ति देती है-
अष्ट सिद्धियां वह
सर्वशक्ति मान होता,
इसे भी जब छोडता वह,
पार करता रेखा जब समष्टि-अहकार की-
चढता है सप्तम सोपान पर,
प्रलय तभी होता है,
मिलता वह अपने सच्चिदानद रूप से"

---

१. पचवटी प्रसग-परिमल, पृ० २५१

इस प्रकार जीव के धर्म अहकार के नष्ट तथा ज्ञान के प्राप्त होने पर ही आत्मा-परमात्मा की एकरूपता सम्भव है। निराला ने इस अवस्था को प्रलय कहा है क्योकि इस अवस्था मे मन, बुद्धि तथा अहकार सबका लय हो जाता है। मन मे वृत्तिहीन कर देने को ही तो योग की भाषा मे लय कहते है।

वेदान्तियों के अनुसार आत्मा की भेद बुद्धि के निवारण की अवस्था ही मुक्ति नहीं है, वरन् मुक्ति तो आनन्द की अवस्था भी है। यही आनन्द ब्रह्मानन्द है। आत्मा तथा परमात्मा के तादात्म्य या मुक्ति की अवस्था का चित्रण निराला ने 'जागरण' की इन पक्तियो में किया है-

'अविचल निज शाति में
क्लान्ति सब खो गई
डूब गया अहकार
अपने विस्तार में
टूट गए सीमा बन्ध
छूट गया जड पिण्ड
ग्रहण देश काल का,
निर्बीज हुआ मैं-
पाया स्वरूप निज,
मुक्ति कूप से हुई,
नीड़स्थ पक्षी की
तम विभावरी गई-
विस्तृत अनन्त पथ
गगन का मुक्त हुआ,
मुक्त पख उज्जवल प्रभात में,
ज्योतिर्मय चारो ओर
परिचय सब अपना ही।
स्थित मैं आनन्द में चिरकाल
जालमुक्त! ज्ञानाम्बुधि।'[1]

---

१ निराला, जागरण-परिमल, पृ० २६१

'राम की शक्ति पूजा, पचवटी-प्रसग आदि कविताओ मे निराला ने यौगिक प्रक्रियाओं का उल्लेख भी किया है। यह योग दर्शन का प्रभाव है। 'राम की शक्ति पूजा' मे राम की साधना योग-शास्त्र के अनुरूप हुई है।

योगी का मन जब इडा, पिगला को छोड़ 'सुषुम्ना मार्ग' को पार करता सहस्रार तक पहुँचता है तब सिद्धि की प्राप्ति होती है 'राम की शक्ति पूजा' में राम का मन, एक के पश्चात एक क्रमश सब चक्रो को पार करता हुआ, ऊर्ध्वगामी होता जाता है-

'चक्र से चक्र मन चढता गया उर्ध्व निरलस।।'[1]

इसी प्रकार 'पचवटी-प्रसग' मे कवि ने योग की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। निराला ने अद्वैत तत्व का मर्म समझाते हुए अद्वैत सिद्धि के लिए योग की आवश्यकता पर बल दिया है। राम लक्ष्मण से मुमुक्षु योगी के विषय में कहते है-

'योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता,
मन, बुद्धि और अहंकार से है लडता जब
समर में दिन दूनी शक्ति उसे मिलती है।
क्रम-क्रम से देखता है
अपने ही भीतर वह
सूर्य-चन्द्र-ग्रह तारे,
और अनगिनत ब्रह्माण्ड सारे।'[2]

योगी पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति मानते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि सबकी स्थिति पिण्ड में ही है। इसी कारण कवि ने योगी द्वारा सूर्य-चन्द्र आदि का देखा जाना बतलाया है।

---

१ निराला, 'राम की शक्तिपूजा', अनामिका, पृ० १६२
२ निराला, पंचवटी-प्रसंग, परिमल, पृ० २५१

निराला के चिन्तन की अनेक धाराए होते हुए भी दो ही प्रमुख है- जीवन दर्शन तथा तत्व दर्शन। तत्व दर्शन की प्रमुख पीठिका अद्वैतवाद से निर्मित है। योग की झॉकियॉ भी उनके काव्य मे सुलभ हैं, किन्तु कम। 'राम की भक्ति पूजा' मे योग और भक्ति के सयुक्त रूप को प्रस्तुत करके कवि ने एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। निराला का अद्वैतवाद उन के काव्य की, उनके रहस्यवाद की धुरी है और उस पर वे स्थान-स्थान पर विचरते दीखते हैं।

इस प्रकार निराला के काव्य मे अध्यात्म की प्रमुखता के कारण योग और अन्त साधना को भी स्थान प्राप्त है। यह भी वेदान्त दर्शन के अनुकूल है। रामकृष्ण मिशन ने "परिमल" के कवि को अद्वैतवाद दिया। वास्तव मे भक्ति के द्वारा ही आध्यात्मिक उन्नति सभव होती है अत भक्तिहीन ज्ञान और ज्ञान हीन भक्ति-दोनो अपूर्ण है।

"परिमल" से "गीतगुज" तक की कई कविताओं द्वारा निराला जी ने परमात्मा के चरणों में अपनी द्रवित आस्था का अर्ध्यदान अर्पित किया है जो वैष्णवी प्रप्रत्ति का ही रूपान्तर है। ब्रह्म तत्व ज्ञानी दार्शनिक निराला का 'भक्ति ज्ञान' के सम्बन्ध में यह विश्वास है कि-

"भक्ति-योग-कर्म-ज्ञान एक ही है, यद्यपि
अधिकारियों के निकट-भिन्न दीखते हैं।"[1]

निराला जी की परवर्ती कृतियों-'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' में अधिकांश विनय एवं प्रार्थना के गीत हैं।

शांकर अद्वैत तत्वों को निराला जी के समस्त साहित्य में देखा जा सकता है। साथ ही रामकृष्ण मिशन के निकट सम्पर्क और बंग संस्कृति के प्रभाव के

---

१ निराला-परिमल (प्रार्थना)।

कारण शक्ति साधना को भी निराला जी ने ग्रहण किया है और वे अव्यक्त सत्ता को जननी, मॉ, आदि शब्दों से सम्बोधित किया करते हैं। स्वामी रामकृष्ण और विवेकानन्द शक्ति के उपासक रहे। उन्हीं के प्रभाव से निरालाजी ने भी ब्रह्म की कल्पना मातृरूप मे की है-

> ''सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है
> आदि शक्ति रूपिणी।
> शक्ति से जितनी शक्तिशालियों में सत्ता है,
> माता है मेरी ये।''[1]

निराला जी की यह 'विराट शक्ति' स्वामी विवेकानन्द की 'श्यामा' की तरह मृत्युरूपिणी भी है। निराला जी ने स्वामी विवेकानन्द जी की कविता ''नाचुक ताहाते श्यामा'' का ''नाचे उस पर श्यामा'' शीर्षक पर जो अनुवाद किया है उससे यही विदित होता है कि मातृरूपिणी ही नहीं, मृत्युरूपिणी माता के रूप मे भी उन्होने शक्ति को स्वीकार किया है।

बगाल की धर्म-साधना मे पार्वती के अतिरिक्त शक्ति के तीन अन्य-रूप भी मिलते है, लकारक्षिणी, चामुण्डा, महीरावण की उपास्या महामाया योगाधा और राम की रक्षिणी अम्बिका अर्थात् दुर्गा। ''राम की शक्ति पूजा'' में लंकारक्षिणी चामुण्डा के अतिरिक्त शेष दोनो रूपों का दर्शन हमें होता है। राम को शक्ति संचय के लिये शक्ति-पूजा योग-मार्ग पर करनी पडती है। शक्ति पूजा द्वारा राम अपने अन्तर की गुप्त शक्तियों को जागृत करते हैं;

> होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन,
> कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।''[2]

---

१ निराला, परिमल-पचवटी, प्रसग, पृ० २२२

२. निराला, अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १६५

निराला जी ने अनेक गीतो मे मातृभूमि भारत की वन्दना की है। ये गीत भारतीयो के मन मे भावात्मक प्रतिक्रिया लाने मे सशक्त हैं। प्रस्तुत कविता मे भारत माँ की गौरव मण्डित भव्य दिव्यमूर्ति प्रत्येक भारतीय के मन मे अकित हो जाती है-

"भारति जय विजय करे कनक शस्य कमल धरे।
लका पदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर, जल,
धोता शुचि चरण युगल स्तव कर बहु अर्थ भरे
तरू तृण बन लता वसन अचल में खचित सुमन,
गगा ज्योतिर्जल कण, धवल धार-हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशायें उदार, शतमुख शतरव मुखरें।"[1]

स्वामी विवेकानन्द जी उन्नींसवीं शती के अन्तिम चरण से भारतीय अध्यात्ममूलक समाजवाद का प्रचार भारतवर्ष के कोने-कोने मे और देश विदेश मे भी जाकर करने लगे जो परिस्थिति की मांग थी। विवेकानन्द जी सच्चे अर्थ में मानवतावादी थे। एक ओर आत्म विश्वासहीन जातीय ऐक्य बोध से वचित तथा अनेक आघातो से म्रियमाण भारत-सतानो को स्वामी जी ने देश और देशवासियो की सेवा के लिये कटिबद्ध होने का आदेश दिया। तो दूसरी ओर दीनवत्सल होकर देश के दलित जन समुदाय की सेवा करने का उपदेश दिया।

भारतीय आध्यात्मवादी सास्कृतिक समाजवाद के उद्गायक स्वामी विवेकानन्द के सिद्धान्तों के उद्घोषण से भारत के वातावरण में एक उत्तेजना फैली, राजनीतिक जागरण के साथ समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जाग उठी और ईश्वर पर आस्था के साथ दीन-दलित की सेवा करने और पुन: भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समाजवाद को परिस्थिति के अनुकूल उपस्थित

---

१. निराला, गीतिका, पृ० ७३

करने की उत्कट आकाक्षा जागृत हुई। इन्ही सिद्धान्तों से निराला प्रभावित हुये। ईश्वर के प्रति आस्थावान रहते हुये मानव जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिये भारत के आध्यात्मिक बल वैभव पर विश्वास करते है, और जीवन के बाह्याडम्बरों, छल प्रवंचनाओ और अंधविश्वासों का पूर्ण रूप से विरोध करते है।

रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द की अद्वैतवादी विचारधाराओ और मानवतावादी सिद्धान्तो से निराला जी का अन्तः सस्कार उदात्त हो गया। निराला जी के समग्र साहित्य का मूल स्रोत ही मानवतावाद है, इसे भारतीय आध्यात्मपरक समाजवाद भी कहा जा सकता है। कवि-निराला की सास्कृतिक चेतना वायवी नहीं है, प्रत्युत लोक जीवन या सामान्य मानव जीवन के उन्नयन के उच्च आदर्श को लिये हुये है। निराला जी ने भारतीय समाज की कुरीतियो, वाह्य आडम्बरों विषमताओ, आर्थिक विकृतियो, वर्ग भेदो और सामती बन्धनो के प्रति ऐसा आक्रोश प्रकट किया है कि उन्हे तुरन्त मार्क्सवादी प्रगतिवादियो की कोटि मे सम्मिलित करने की चेष्टा की जाती है। परन्तु सत्य तो यह है कि उनकी प्रगतिशीलता राजनीतिक या आन्दोलनात्मक नहीं है। यह अवश्य है कि उन्होने भारत के किसान, मजदूर, भिखारी, विधवा आदि पात्रों के संघर्षो को सशक्त वाणी प्रदान की है जिसमें तीव्र करुणा के साथ-साथ उत्पीड़न और शोषण के प्रति तीव्र विद्रोह की प्रवृत्ति है। उत्पीडन और शोषण के प्रति तीव्र विदोह की प्रवृत्ति है। निराला मूलतः मानवतावादी हैं। वर्तमान दीन-दलित सामाजिक दशा के लिये उत्तरदायी समाज व्यवस्था के प्रति निराला जी का सक्रिय आक्रोश 'भिक्षुक', 'दीन', 'कुकुरमुत्ता', 'तोडती पत्थर' आदि रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

''कुकुरमुत्ता'' के द्वारा निराला जी के अध्यात्म परक समाजवाद का पुष्ट परिचय प्राप्त होता है। निराला जी केवल आर्थिक भूमिका पर साम्यवादियों की

भाति साम्यमूलक समाज की स्थापना करने में विश्वास नहीं करते, परन्तु उनका विचार है कि मानव के व्यक्तित्व का आध्यात्मिक रूप से जब विकास एव प्रसार होगा तभी उनकी कल्पना की समाजवादिता सफल हो सकेगी। निराला जी के इस आदर्श का ज्वलन्त प्रमाण ''बेला'' का यह गीत है-

''अन्तस्थल से यदि की पुकार
सब सहते साहस से बढकर
आयेंगे, लेंगे भी उबार।
.. . .
सादा भोजन, ऊँचा जीवन
होगा चेतन का आश्वासन
हिसा को जीतेंगे सज्जन
सीधी कपिला होगी दुधार।''[1]

निराला जी की समाजवादिता स्पष्ट है कि एक ओर सभी बन्धनों को कुचलकर उन्मुक्त वैयक्तिक एव सामाजिक जीवन को प्रतिष्ठित करने के पक्ष में है तो दूसरी ओर ''अधिवास'', ''सेवा-प्रारम्भ'' इत्यादि गीतो में परिलक्षित होता है कि उसके लिये शुद्ध आध्यात्मिक मानवतावाद की भूमिका की नितान्त आवश्यकता है। निराला जी की समाजवादिता के पुष्ट प्रमाण के रूप में यह गीत दिया जा सकता है-

''फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुई सम्मिलित,?
धीरे-धीरे हुये विरोधी भाव तिरोहित
भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न धर्मों में संचित
हुये भाव, मानव न रहे करूणा से वंचित,
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता-जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके।''[2]

---

१ निराला, बेला, पद्य-६८
२ निराला, अणिमा, 'भगवान बुद्ध के प्रति', पृ० ३४

(आ) बंगला कविता और रवीन्द्रनाथ

बग भूमि मे जन्म होने और जीवन का प्रारम्भिक काल, लगभग तीन युग, व्यतीत करने के कारण बग भाषा और साहित्य से 'निराला' की अभिज्ञता तथा उसके प्रति उनकी अभिरुचि सहज एव स्वाभाविक थी। जन्मभूमि होने के कारण बंगाल उन्हें स्वभावत प्रिय रहा, जिसे वे रोमाटिक कविता का पर्यायवाची शब्द मानते थे। बगाल की प्रकृति और प्रचुर जलाशयता के साथ कलकत्ते का मुक्त और निष्कपट वातावरण कविता के लिए उन्हे पसन्द था।[1] यहीं बचपन की निष्कामता ने उन्हे सर्वप्रथम सब प्रकार के सौन्दर्य को देखने और उनसे परिचित होने की आदि प्रेरणा दी थी, जो क्रमश सस्कार रूप मे परिणत हुई।[2] अपने ऊपर बगला के आधुनिक अमर साहित्य के प्रभाव को निराला स्वत स्वीकार करते है।[3] "बगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैने पढा है।[4] गाधी जी से बातचीत के समय यह स्वयमुक्ति कवि की है। बगालियो की भावप्रवणता निराला मे मिलती है किन्तु बग भाषा-सस्कृति के इस अतिरिक्त भावावेश से इतर दूसरा उल्लेखनीय तथ्य है राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से बंगाल द्वारा हिन्दी को मिली भावनात्मक समृद्धि, इसका भी प्रमाण हमे 'निराला' में उपलब्ध होता है।

बंगाल मे रहते हुए उसके सास्कृतिक अभ्युत्थान मे निरत सशक्त व्यक्तित्वों श्री रामकृष्ण विवेकानन्द और कवीन्द्र-रवीन्द्र से अपरिचित अथवा अप्रभावित रहना 'निराला' के लिये सर्वथा असम्भव ही था। भारत मे और सर्वप्रथम बंगाल में, ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ नवजागरण की जो चेतना प्रादुर्भूत हुई थी उसके प्राथमिक और मूलत सुधारवादी (मुख्यत धार्मिक और सामाजिक सुधार से सम्बन्धित) स्वरूप का प्रतिफलन

---

१. निराला, डा० रामविलास शर्मा, पृ० १८
२ गीतिका की भूमिका, पृ० ११
३ परिमल की भूमिका, पृ० ११
४ प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २५

अन्तत राष्ट्रीयता की भावना मे होता है, जिसे तीव्रता बग-भग आन्दोलन के साथ मिलती है।

स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्र दोनो ही महापुरुषो ने समानरूप से पुरातन रूढियो और परम्पराओ का विरोध कर अतीत कालीन भारत के चिरन्तन वैभव और आर्य सस्कृति के अभिमान का ज्ञान भारतवासियो को दिया था। स्वदेश-प्रेम, त्याग और आत्मविश्वास का मूलमत्र लेकर विवेकानन्द और रवीन्द्र की क्रान्तिकारी शक्तियों को हम धर्म और साहित्य के क्षेत्र मे निरन्तर सक्रिय देखते है।

निराला जहॉ श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द के विचार-दर्शन, मिशन और उसके सन्यासियो के घनिष्ठ सम्पर्क मे आये, वहीं रवीन्द्र और उनके साहित्यिक आन्दोलन, जिसका मूल स्रोत वैष्णव कवि थे से भी प्रेरणा ग्रहण की। यद्यपि निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जितनी श्रद्धा और भक्ति की भावना 'निराला' के हृदय में श्री देव रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द अथवा गोस्वामी तुलसीदास के प्रति थी, उसका सताश भी स्नेह-भाव रवीन्द्र के प्रति उनके मन मे नहीं था, तथापि 'निराला' पर पडा रवीन्द्र का प्रभाव अस्थायी नहीं, स्थायी और गहरा है, जिसे समग्रत· अलक्षित करना सभव नहीं है। स्वामी विवेकानन्द और उनके वेदान्त दर्शन की भाति रवीन्द्र और उनका साहित्यिक आन्दोलन भी निराला की काव्य प्रेरणा के आदि स्रोतों में गणेय है।

बंगला साहित्य का परिपूर्ण विकास बंगला के जातीय महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, के उदय के उपरान्त होता है। 'सन्ध्या संगीत' के प्रकाशन के साथ रवीन्द्र की प्रतिभा चमक उठी और 'प्रभात सगीत' द्वारा बंगला साहित्य में धूम मच गयी, इसके पदों को विशेषत· ओज और छन्दों के बहाव तथा विचार की दृष्टि

से निराला सर्वश्रेष्ठ मानते है।[1] विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का परिचय देते हुये निराला ने बताया है कि क्रमश कविता की नन्दन भूमि मानसी सौन्दर्य की मनोहारी सृष्टि 'चित्रा' नवीनता और नए ढग की प्रकाशन-धारा लिए 'सोनार तरी', सौन्दर्य की हद तक पहुँचाने वाली 'चिना' और नामकरण मे ही कविता लिए 'चैताली आदि विविध सोपानो को पार कर रवीन्द्र की काव्य साधना 'गीताजलि' में समाहित होती है। उनका सम्पूर्ण साहित्य उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचायक है जिसके विस्तार मे सम्पूर्ण विश्व प्रकृति समविष्ट है।[2] उनका ध्रुव सकल्प सौन्दर्यान्वेषण का ही था।

कविवर रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित साहित्यिक आन्दोलन अथवा बगला के रोमान्टिक काव्य का एक स्रोत वैष्णव कवि थे।[3] निराला द्वारा प्रशसित इनकी श्रृगार और रूप वर्णन का, भक्ति और सर्वव्यापक चेतनावाद के अतिरिक्त उनकी वर्णन शक्ति और माधुर्य का भी अनिवार्य एव प्रभूत प्रभाव रवीन्द्र पर पडा था। वैष्णव कवियो के 'शब्द लालित्य' का उल्लेख करते हुए निराला लिखते है- "इन वैष्णव कवियों से कविवर रवीन्द्रनाथ ने इतना ऋण लिया है, जिसका ठिकाना नहीं, परन्तु ब्याज मे उन्होने किसी को एक कौडी भी नहीं दी, हाँ एक वैष्णव कविता मे अपनी ओर से उनकीं तारीफ जरूर कर दी है।"[4] वैष्णव कवियों पर लिखी अपनी इस कविता में रवीन्द्र ने उनकी भक्ति के मानवीय रूप की ओर सकेत किया है और उनकी शैली के अनुकरण पर 'भानुसिंहेर पदावली' पदावली की रचना भी कर डाली।[5]

---

१ 'रवीन्द्र कविता कानन', पृ० १७-१८
२ वही, पृ० १७-१८
३ निराला- डा० रामविलास शर्मा- पृ० ५७
४ 'प्रबन्ध प्रतिमा', पृ० २३३
५ निराला- डा० रामविलास शर्मा, पृ० ५६

बगला जानने वाले हिन्दी के नये कवियो का वैष्णव कवियो की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। रवीन्द्र की प्रशसात्मक रचनाए भी इस दिशा मे सहायक सिद्ध हुई। वैष्णव कवियो को निराला ने बंगला मे पढा था और उनके पदों का अनुवाद करते हुये उन्होने पदो को कहीं अपने अनुसार सुधारा और कही उन्हे बॅगला के अनुरूप ही रहने दिया।[1] बगाली वैष्णव कवियो के विवेचन मे निराला ने चण्डिदास, विद्यापति और गोविन्ददास का उल्लेख विशेष रूप से किया है।

बगाल के वैष्णव कवियो पर कुल मिलाकर निराला ने चार लेख लिखे और ये सभी सन् २८-२६ के लगभग मुख्य रूप से 'सुधा' और 'माधुरी' मे प्रकाशित हुए थे। निराला का प्रथम परिचयात्मक लेख बंगला के आदि कवि भक्त-प्रवर कविवर श्री चण्डिदास पर था, जो समान रूप से बंगाल के सम्मान, श्रद्धा और स्नेहके पात्र थे। सन् २८ की 'सुधा' के अगस्त अक मे 'विद्यापति और चण्डिदास' पर उनका दूसरा विस्तृत और तुलनात्मक लेख प्रकाशित हुआ, जिसके प्रारम्भ मे लेखक द्वारा अपने पहले लेख का उल्लेख मात्र है। सन् २८ की 'माधुरी' के भी अगस्त के ही अक में उनका एक सुदीर्घ प्रशंसात्मक निबन्ध ''बगाल के वैष्णव कवियों की श्रृगार वर्णना'' निकला था, जिसमे प्रधानत· चण्डिदास और गोविन्ददास को ही निराला ने उद्धृत किया है। पूर्व निबन्ध मे केवल दो-दो अन्य उद्धरण ज्ञानदास और विद्यापति के आए हैं। ज्ञानदास भी गोविन्ददास के सदृश चैतन्य के अनुवर्तियों में थे।[2] वैष्णव कवियों पर उनका अन्तिम और चतुर्थ लेख कवि गोविन्ददास की कुछ कविता सन् २६ की 'सुधा' के मई अक में छपा। यह लेख न होकर वस्तुतः कवि गोविन्ददास की कुछ कविता

---

१. प्रबन्ध, प्रतिमा की भूमिका।

२ इण्डियन लिट्रेचर, सम्पादक - डॉ० नगेन्द्र, पृ० ३७५, बंगाली डॉ० के० बनर्जी।

ही है क्योकि गोविन्ददास की सरस पदावली के पाठ से उत्पन्न भावना द्वारा बलात कवि से कराया गया १६ पदो का रूपान्तर यहॉ प्रस्तुत है। श्रृंगार वर्णन के प्रसग में भी इनके ६ पदो को निराला ने उद्धृत किया था। इस पद राशि के अतिरिक्त गोविन्ददास के १३ अन्य पदो के अनुवाद मे भी निराला ने इच्छानुसार ब्रजभाषा अवधी, भोजपुरी और मैथिली आदि का मिश्रण कर दिया है। यद्यपि प्रधानता ब्रज और अवधी की है।

वैष्णव कवियो की पदावली का निराला ने जो अनुवाद किया है, उसमे गोविन्ददास के पदो की सख्या सर्वाधिक है। चण्डिदास के कतिपय पदो का 'निराला' द्वारा छतरपुर मे किया गया अनुवाद 'सुधा' मे भक्त कवि पर प्रकाशित उनके लेख मे अपने मूलरूप सहित प्रकाशित हुआ था। छतरपुर के महाराज के कहने से ही चण्डिदास के एक पद का अनुवाद ब्रजभाषा के कवि ललित किशोरी के छद मे भी 'निराला' ने किया था। यह अनुवाद 'छत्रपुर' मे तीन सप्ताह' लेख मे उन्होने दिया है। यो तो अनुदित रूप मे चण्डिदास के मात्र तीन पद ही सुधा मे दिये गये थे, परन्तु अपने अन्य लेखो मे चण्डिदास के आठ और पदो का उद्धरण 'निराला' ने दिया है। गोविन्ददास के पदो के समक्ष चण्डिदास के पदो की यह संख्या नगण्य ही है।

बगाली वैष्णव कवियो पर लिखे अपने इन प्रशसात्मक लेखो मे 'निराला' ने उनके जीवन वृतान्त और पदावली का परिचय देने के साथ ही उनकी श्रृंगार-वर्णना और भक्ति की अद्वैत आनन्द में परिसमाप्त होने वाले प्रगाढ़ प्रेम की प्रशंसा की है। पुराने कवियों का श्रृंगार के माध्यम से अभिव्यक्त 'सर्वव्यापक चेतनावाद 'निराला' की दृष्टि में विशेषरूपेण प्रशंस्य है। उनकी श्रृंगार रचना

---

१. सुधा, जुलाई २८/चयन में संकलित।

भावना गहन वेदान्तिक विचारो को अन्तरित किए क्रमश विकसित होती है।[1] अतएव यह श्रृगार चर्चा निराला के लिये वेदान्त का भाव पक्ष ही है। श्रृगार के लिये वीर और वीर के लिये श्रृगार रस की आवश्यकता उन्होने सिद्ध की है।[2] बगाल के इन भक्त कवियो का मनोविज्ञान के साथ कविता का सार्थक निर्वाह और विशेषत रूप-वर्णना के प्रसग मे वर्णन शक्ति का चमत्कार भी निराला द्वारा अदृष्ट नही हो सका है। उनके माधुर्य और शब्द-सौन्दर्य की उन्होने प्रशस्ति की है। बगला-भाषा के माधुर्य का समस्त श्रेय 'निराला' ने इन्हीं कवियो को दिया है। जिन पर हिन्दी की ब्रजभाषा शैली का अत्यधिक प्रभाव था। इस प्रभाव के दो कारण 'निराला' ने बताये है-

"एक तो ब्रजभाषा वहीं की भाषा है जहॉ के उनके इष्टदेव थे। दूसरे माधुर्य के विचार से ब्रजभाषा ही उस समय की प्रचलित भारतवर्ष की भाषाओ मे मुख्य मानी जाती थी।"[3] इन वैष्णव कवियो के प्रति 'निराला' के प्रशस्त दृष्टिकोण का कारण मूलत· उनका मधुर रस है, जो समान रूप से उनकी ज्ञानचर्चा का साधन भी है।

इन भक्तो को अपने इष्ट का साक्षात् दर्शन वहां होता है जहॉ उनकी प्रबल और एकनिष्ठ भक्ति का प्रभाव है, यही स्नेह-साधना उनकी शक्ति और सिद्धता की परिचायक है। यही कारण है कि इनके प्रति 'निराला' का आलोचक मुखर नहीं, प्रायः मौन है। यहीं ज्ञान पक्ष की अपेक्षा भावपक्ष के अधिक प्राबल्य का रहस्य भी सन्निहित है, जिसके कारण 'निराला' इन्हें ज्ञानी अथवा सन्यासी नहीं, साधक कहते हैं। चण्डिदास आदि वैष्णव कवियों का 'निराला' पर वास्तविक

---

१ प्रबन्ध-पदम, पृ० १३६

२ प्रबनध-प्रतिमा, पृ० २३१-२३२

३ प्रबन्ध-प्रतिमा, पृ० २३३, प्रबन्ध पद्म, पृ० २८-२६-१३७ भी दृष्टव्य 'सुधा', मार्च ३५, पृ० १७६

प्रभाव शून्य के बराबर इसीलिए है, क्योकि निराला को वही कवि पूर्णत प्रभावित करता है, जिसका ज्ञान पक्ष और भाव पक्ष समान रूप से प्रबल हो।

'निराला ने रवीन्द्र के आविर्भाव को प्रकृति द्वारा प्रकृति के अभाव की पूर्ति तो कहा है'[1] परन्तु रवीन्द्र को वे उस अर्थ मे अवतार नहीं मानते, जिस अर्थ मे श्री रामकृष्ण को। कारण, रवीन्द्रनाथ की जीवनी मे प्रकृति दर्शन की जिन अनेक कथाओ से उनके भावी जीवन का कुछ अनुमान होता है, उनके अतिरिक्त उनके बालपन मे कोई ऐसी विचित्रता नहीं मिलती, जिससे यौवन काल की महत्ता सूचित होती हो। फिर ज्ञान नहीं, मात्र शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से रवीन्द्र की प्रतिभा और कवित्व शक्ति को निराला स्वीकार करते है। बगाल के इस जातीय महाकवि के प्रति 'निराला' की अस्मिता की प्रबुद्धता का भी यही कारण है, जब की सन्यासी के प्रति वे सतत् अवनत् रहते है। 'निराला' ने स्पष्ट लिखा है- रवीन्द्रनाथ की नकल बनू------- मेरी इच्छा नहीं, मैं मैं हूँ, सूर्यकान्त रवीन्द्रनाथ नहीं--------- कान्त 'इन्द्र' और 'नाथ' की गुरुता चाहेगा?[2]

'रवीन्द्र-कविता कानन' रवीन्द्र पर लिखित 'निराला' की प्रथम कृति है, जिसमें महाकवि का खोजपूर्ण सक्षिप्त जीवन-परिचय देने के उपरान्त निराला ने उनकी प्रतिभा और कला का विस्तृत और प्रशंसामूलक विवेचन किया है। उनकी स्वदेश-प्रेम, सकल्प, श्रृगार, सगीत और शिशु सम्बन्धी सभी रचनाओं को 'निराला' ने लिया है। रवीन्द्र के प्रति निराला की आलोचनात्मक दृष्टि का उन्मेष इस कृति में नहीं हुआ है और निस्सकोच उन्होंने रवीन्द्र को कवि ही नहीं ऊँचे

---

१ 'रवीन्द्र कविता कानन', पृ० ३०४

२ साधना वर्ष १, अक ६-१०, पृ० ३८, ३१-३-३६ को ५८ नारियलवाली गली से जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखा निराला का पत्र।

दर्जे का दार्शनिक भी कहा है।[1] यही तथ्य बाद मे 'निराला' की रवीन्द्र विषयक आलोचना का मूलाधार सिद्ध हुआ। मतवाला के मई २४ के अक मे निकले अपने प्रथम तुलनात्मक निबन्ध 'कविवर बिहारी' और 'कवीन्द्र-रवीन्द्र' मे भी रवीन्द्र की श्रेष्ठता का उन्मुक्त प्रतिपादन निराला ने किया था। अगस्त सन् २६ मे रवीन्द्र पर प्रकाशित उनके अन्तिम निबन्ध मे 'महाकवि रवीन्द्र नाथ की कविता', भी शुद्धतम रूप मे रवीन्द्र का प्रशस्तिगान है, जिसे 'रवीन्द्र कविता कानन' कृति का अत्यन्त सक्षिप्त रूप अथवा लघु सस्करण कहा जा सकता है। रवीन्द्र के प्रति यहॉ 'निराला' का आलोचक नितान्त शान्त है।

सन् २६ के 'मतवाला' के मार्च और अप्रैल के अको मे 'निराला' की 'दो महाकवि' लेखमाला प्रकाशित हुई थी। तुलसी और रवीन्द्र के इस तुलनात्मक अध्ययन मे निराला ने अविकल्प रूप से ज्ञान की दृष्टि से तुलसीदास की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। रवीन्द्र की आलोचना का मुख्य आधार यहा उनके दर्शन पक्ष की असंगतिया और दुर्बलता हैं। शुद्ध कवित्व की दृष्टि से यहॉ भी कवीन्द्र पूर्ववत् प्रशस्य हैं, उनकी निर्विवाद सिद्ध प्रतिभा और कवित्व शक्ति के सम्मुख निराला प्रणत हैं, परन्तु तुलसी के सन्यास और ज्ञान के समक्ष उनकी प्रणति और प्रतिपत्ति की भावना स्पष्ट और सहज ही अधिक गम्भीर और गरिष्ठ है। ज्ञानी अथवा सन्यासी के प्रति 'निराला' की इस श्रद्धा और भक्ति भावना के मूल में मिशन और उसके संन्यासियों का प्रभाव विद्यमान है। इस लेख के पहले सन् २५ के 'चरखा' लेख में भी 'निराला' ने रवीन्द्र पर आक्षेप किए थे परन्तु उनका आधार था रवीन्द्र की प्रान्तीयता की भावना, उनका जमींदारी वर्ग का होना और उनका ब्रह्म-समाज से सम्बन्ध। रवीन्द्र का विरोध इन्हीं दो प्रमुख आधारों पर निराला ने किया है।

---

१. 'रवीन्द्र कविता कानन', पृ० २२

'निराला' द्वारा रवीन्द्र की रचनाओ के अनुवाद का जहा तक प्रश्न है, शुद्धतम रूप से उनकी एक भी रचना का 'निराला' कृत अनुवाद उपलब्ध नहीं है। 'अनामिका' मे सकलित 'तट पर' 'ज्येष्ठ' और 'कहा देश है' रचनाएं भी क्रमश रवीन्द्र की 'विजयिनी', 'वैशाख' और 'निरुद्देश्य यात्रा' का यथार्थ अनुवाद नही है। 'अनामिका' मे दी गई इन रचनाओ का पाठ कहीं-कहीं मतवाला के पाठ से भिन्नता रखता है, विशेष रूप से 'तट पर' रचना का काफी परिवर्तित रूप अनामिका मे मिलता है। रवीन्द्रनाथ के भावो पर आधारित रचना 'क्षमा प्रार्थना' भी रचना विशेष का अनुवाद नहीं है। निराला की 'खजोहरा' और 'रानी और कानी' को रवीन्द्र की 'विजयिनी' और 'कृष्ण कलि' की पैरोडी (व्यग लेख) कहा गया है, सन् ४० के लगभग की ये रचनाये भी अनुवाद की श्रेणी मे नहीं आती हैं। रवीन्द्र की चार रचनाओ से सम्बन्धित इस अल्पराशि द्वारा जहॉ रामकृष्ण विवेकानन्द अथवा तुलसी की अपेक्षा रवीन्द्र के प्रति स्नेह श्रद्धा की अल्पज्ञता विज्ञापित है, वहीं रवीन्द्र के स्थायी प्रभाव का स्पष्ट निर्देश भी ये रचनाएं है।

निराला ने रवीन्द्र की कवित्व शक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। इसका रहस्य अथवा उनकी सर्वोत्कृष्ट और अन्यतम विशेषता जिसकी ओर 'निराला' ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, वह है-'भाषा, भाव और छदों पर उनका बहुत बडा अधिकार।' छंदों के साथ सगीत पर भी उनका जबर्दस्त अधिकार था।[1] उनके सौन्दर्य के विराट चित्रों को जीवन की स्फूर्ति से शून्य न कहकर निराला ने मनुष्य की सीमा में रहकर अपनी रागिनी को, अपने प्रकाश को असीम सौन्दर्य में मिला देने की रवीन्द्रनाथ की कुशलता का भी उल्लेख दिया है।

---

१. रवीन्द्र कविता कानन - पृष्ठ १७, १६, १४१

रवीन्द्र की प्रशसा का दूसरा पक्ष वह है, जहा हम 'निराला' को महाकवि का घोर विरोध करता पाते है। यह विरोध भी समान रूप से 'निराला' के लिए प्रेरणाप्रद है। दर्शन अथवा ज्ञान के क्षेत्र मे रवीन्द्र की मौलिकता स्वतः धोखा खा जाती है, अपनी चित्र प्रधान रहस्यवादी कविताओ मे चित्रों की मनोहारिता के फेर मे वे दार्शनिक तत्व भूल जाते हैं-इसका मूलभूत कारण 'निराला' ने यह बताया है कि पाश्चात्य दार्शनिको और कवियो के समान रवीन्द्र भी द्रष्टा नहीं थे।[१] योरूप की वर्णना-शक्ति को स्वीकार करते हुए निराला ने रवीन्द्र की कला की श्रेष्ठता का उत्स भी पाश्चात्य प्रभाव में ही देखा है। रवीन्द्र के विश्ववाद को पाश्चात्य सिद्धान्त के अनुकूल बताकर 'निराला' ने उनके ब्रह्म समाजी होने के कारण उसका सबध उपनिषदों से भी माना है।[२]

रवीन्द्र का मुक्ति बन्धन का विवेचन 'वैराग्य साधन मुक्ति' से 'आभार नय' का दर्शन भी निराला द्वारा आलोचित है। उनका कहना है कि पत्रों की हरीतिमा और आकाश की नीलिमा में मुक्ति मिलने की बात सुनने में अच्छी लगती है। निराला लिखते हैं-'मसनद भी न छूटेगी, तकलीफ भी सहनी नहीं और मुक्ति भी हाथों हाथ। एक हाथ में पूँजीवाद दूसरे में अखण्ड तत्व ज्ञान।[३] अन्यत्र निराला ने लिखा है कि ब्रह्म को अपनी सब सम्पत्ति सौंपकर निश्चिन्त होने के उपरान्त जब गरीबों की प्रार्थना का बोझ भी सिर से उतर जाता है, रवीन्द्र रूप, रस, गध, स्पर्श में मुक्ति प्राप्त कर सन्यासियों को निरा आदमी समझ, सत् और न्यास से कोई तअल्लुक न रख अपनी प्रतिभा के प्रहार से उन्हें जर्जर करते हैं। 'चरखा' प्रसंग में निराला ने रवीन्द्र के ब्रह्म समाजी होने के कारण उनको जातीय प्रथा का विरोधी भी कहा है।

---

१ संग्रह, पृष्ठ १५८, १३३, १५३

२ प्रबन्ध पद्म, पृष्ठ १४५

३. संग्रह पृष्ठ १५५, कुल्ली भाट, पृष्ठ १०, पर रवीन्द्र का उल्लेख भी द्रष्टव्य।

महाकवि रवीन्द्रनाथ का जीवन परिचय देते हुए 'निराला' ने उनकी प्रकृति दर्शन की प्रवृत्ति के साथ उनकी सौन्दर्य और निर्जनप्रियता का उल्लेख भी किया है। निराला में भी रवीन्द्र के सदृश ही प्रकृति सौन्दर्य दर्शन और एकान्त प्रियता की प्रवृत्तिया मिलती है। बाल्यावस्था में साधारण और सहानुभूति की अपेक्षा रखने वाला जीवन व्यतीत करने, मॉ के रोगग्रस्त होने के कारण उनकी गोद मे जीवन की पहली सीढी पार करने का सौभाग्य न मिलने तथा कवित्व शक्ति के कारण आगे न पढ़ने की घटनाओं मे जिस प्रकार निराला और 'रवीन्द्र' मे सादृश्य है, उसी प्रकार पहले प्रकृति और सौन्दर्य तदुपरान्त मानव और उसकी प्रकृति ने 'निराला' को भी रवीन्द्र की भांति सृजन के लिए प्रेरणा दी है। प्रकृति की शोभा देखते रहने और उसके कारण स्वभावत भगवान पर धारणा बंधने का उल्लेख स्वयं निराला ने किया है।[1] देवी कहानी मे 'निराला' ने स्पष्ट लिखा है कि पगली स्त्री में उन्हे वह रूप देख पडा, जिसे वे कल्पना मे लाकर साहित्य मे लिखते है। केवल रूप ही नहीं, भाव भी।[2] हिन्दी के मुखालिफत होने के साथ-साथ वस्तु रूप से आदमी और विषय रूप से उसके मन की जॉच-पडताल कम न करने की बात भी उन्होने स्वय ही स्वीकार की है।[3]

रवीन्द्र के प्रारम्भिक जीवन और काव्य प्रवृत्तियों से निराला की यह समानता तथा उसके प्रति 'निराला' की प्रशंसा और विरोध मूलक दृष्टि निःसंदेह रवीन्द्र और उनके काव्य को 'निराला' के काव्य का प्रेरणा स्रोत सिद्ध करती है। रवीन्द्र की कला, छद और भाषा, श्रृगार सौन्दर्य एवं स्वदेश प्रेम की भावना तथा रोमाण्टिक और रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ जो 'निराला' को प्रिय थीं, उनसे वे निश्चय

---

१ 'सुकुल की बीबी', पृष्ठ १४ 'चतुरी चमार', पृष्ठ ७१-७८

२ चतुरी चमार' पृष्ठ ४१-४२

३. 'प्रबन्ध प्रतिमा' पृष्ठ १८

ही अप्रभावित नही रह सके है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि बगला और हिन्दी के इन महाकवियो के क्रमश धनी और सामान्य वर्ग की असमानता के कारण जीवन और प्रवृत्तिगत कतिपय सादृश्यो के होते हुए भी, दोनो के काव्य स्तरों मे काफी अन्तर आ गया है। पुष्किन की तरह समृद्ध कुल में जन्म लेकर रवीन्द्र जन-जीवन के साथ अपने को एक प्राण न बना सके, अपनी इन सीमाओ के प्रति वे सचेत थे,[1] जबकि 'निराला' के समान्य जीवन ने ही जन-समाज के प्रति उनको आस्था दी है जो उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

निराला पर रवीन्द्र के प्रभाव को दर्शाने वाला महत्वपूर्ण तथ्य है उनके काव्य की श्रृगारिक रहस्यवादी भूमिका 'निराला' की यह रहस्यानुभूति जिसकी अन्तर्भूमि रवीन्द्र के काव्य मे मिलती है और जो उनकी सस्कारजन्य अन्तर्गति भी है जहां एक ओर युगीन प्रभाव को सकेतित करती है, वहॉ दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन का स्पर्श भी करती है। रवीन्द्र का विश्ववाद योरोपीय सिद्धान्त की अनुकूलता के कारण वहीं सफल हैं, जहा अनादि तत्व का सच्चा अनुवाद है अथवा तद्नुकूल लिखा है,[2] परन्तु 'निराला' इसके विपरीत विशुद्ध भारतीय भूमिका पर अवस्थित है। रामकृष्ण, विवेकानन्द के विचार दर्शन की संहति के कारण निराला का रहस्यवाद रवीन्द्र की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से अधिक पुष्ट है। रवीन्द्र का रहस्य चेतना आविष्ट शृंगार और सौन्दर्य का भावयुग्म उसकी कल्पना और कला निराला की प्रेरणा का एक प्रमुख स्रोत रहा है। रवीन्द्र और निराला दोनों के अध्ययन और चिन्तन की आधारभूत सामग्री एक है- वेदान्त दर्शन।[3] काव्य में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति का माध्यम एक ही

---

१. साहित्य की परख, शिवदान सिह चौहान, पृष्ठ ७९

२. संग्रह, पृष्ठ १३३

३. टैगोर और निराला- पृष्ठ २२४- अवध प्रसाद।

है-श्रृंगार भाव, जिसका प्रतिफलन युग की आवश्यकता के अनुरूप विस्तार का भाव और विराट चित्रो का आयोजन लेकर हुआ है। इस दिशा मे रवीन्द्र का प्रदेय अधिक स्पष्ट है। वास्तव मे विशुद्ध रहस्यवादी रचनाओ की अपेक्षा रहस्यानुभूति सश्लिष्ट रवीन्द्र की श्रृगारपरक रचनाए प्रभाव की प्रमुख दिशा है, जिसमे वैष्णव कवियो का परोक्ष प्रभाव भी अन्तरित है। यह स्मरणीय है कि रवीन्द्र से ग्रहीत यह प्रेरणा निराला की प्रारम्भिक रचनाओ मे ही प्रमुख रूप से परिलक्षित होती है। उनकी उत्तरकालीन रचनाए प्ररेणा के अन्य विविध स्रोतो का निदर्शन करती है। रवीन्द्र के जीवन दर्शन की आश्चर्यजनक और असाधारण विशिष्टता है कि वहां आध्यात्मिकता का तात्पर्य भौतिक अथवा प्राकृतिक तत्वों की पूर्ण अस्वीकृति नहीं है। उनके जीवन दर्शन का मूल सूत्र सीमा के बीच ही असीम के साथ मिलन की आराधना भी सम्मिलित है। क्षुद्र और महान मे कवि की इस स्थिति और विश्व प्रकृति मे उनके हृदय के प्रसार को निराला उनकी प्रतिभा का प्रमाण मानते है, रूप और अरूप का तो उन्हे निपुण कलाकार उन्होंने कहा ही है।[1]

गीतिका के 'अस्ताचल रवि' 'जल छल-छल छवि' 'स्तब्ध विश्वकवि' जीवन उन्मन गीत मे आचार्य बाजपेयी के शब्दो में रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गयी है।[2] मन में प्राणधन का चिन्तन करती प्रिया और कवि के अर्पण द्वारा शेष में गीत की परिणति होती है। 'ध्यान लग्न नैश गनन' और 'स्तब्ध अंधकार सघन' मे श्री रामकृष्ण विवेकानन्द की समाधि का भाव भी अन्तरित है। जहा सौन्दर्य के साथ सत्य की अवस्थिति है वहां विवेकानन्द के स्वरों की अनुगूंज भी स्पष्ट है। वास्तव में गीतिका में जो अपनी कला और कल्पना की श्रेष्ठता के

---

१ रवीन्द्र कविता कानन, पृष्ठ ४३, ५०, १५३, प्रबन्ध पद्म, पृष्ठ ८१
२ गीतिका, पृष्ठ २६

कारण निराला की श्रेष्ठतम कृतियो मे गणेय है उसमे हम निराला को रवीन्द्र की कला और विवेकानन्द के सत्य को आत्मसात कर मौलिक रचना में प्रवृत्त देखते है। रवीन्द्र और विवेकानन्द के प्रेरणा सूत्र यहा परस्पर मिल गए है। रूप की यह पूर्णता भावो की सुसम्बद्धता और मनुष्य की सहज भावनाओ की उच्चता, गीतो के इस मानवीय रूप को डॉ० रामविलास शर्मा ने हिन्दी मे दुर्लभ बताया है। मानवीय शृगार और सौन्दर्य की पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाली कला के लिए निश्चित रूप से रवीन्द्र से प्रेरणा ली थी, रवीन्द्र के अतिरिक्त इस दिशा मे उनका दूसरा स्रोत कालिदास थे।

निराला का 'प्रिय यामिनी जागी'[1] गीत रवीन्द्र के 'आहा जागि पोहाल विभावरी' संगीत के समकक्ष उसी प्रकार है जिस प्रकार रवीन्द्र का गोविन्ददास के अनुरूप। रवीन्द्र ने अपनी रचना के अन्त में मिलन का सकेत किया है और निराला के गीत की परिणति 'वासना की मुक्ति', 'मुक्ता त्याग में तागी' में होती है। निश्चय ही शैलीगत प्रेरणा प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से रवीन्द्र से ग्रहण करने पर भी भावमूलक आध्यात्मवाद की अनुप्रेरणा निराला ने स्वामी विवेकानन्द से ली है।[2]

अपने सगीत 'आहा जागि पोहाल विभावरी' में आगत यौवना सुन्दरी की विरह कल्पना में रवीन्द्र अपनी सहृदयता और मर्मज्ञता का परिचय देते हुए विरहिणी नायिका के प्रति अपनी अपार सहानुभूति प्रकट कर कवित्वपूर्ण देन से उसे मिलन भूमि की ओर ले जाते हैं। निराला ने भी शेफालिका को प्रणय अथवा मिलन के प्रतीक के रूप में अपनाया है। डॉ० रामरतन भटनागर के अनुसार शेफाली आत्मा का प्रतीक है। आत्मा परमात्मा के मिलन को कवि ने इस सुन्दर स्वरूप द्वारा स्पष्ट किया है।[3]

---

१ गीतिका, पृष्ठ ४

२ टैगोर और निराला, पृष्ठ १६६, अवध प्रसाद।

३ कवि निराला एक अध्ययन, पृष्ठ ६६, डॉ० रामरतन भटनागर।

रवीन्द्रनाथ विश्व और जीवन मे एक ही ज्योति की परिव्याप्ति देखते है। गीताजलि मे यही भाव उन्होने 'आलो आभार, आलो ओ गो' गीत मे व्यक्त किया है।[१] स्मृति-चुम्बन और प्रेयसी स्थल मे निराला ने 'ज्योति छवि' और उसके मिलन का जीवन वीणा मे अश्रुत बजते झकार का उल्लेख किया था।[२] आराधना मे 'ज्योति प्रपात', 'ज्योतिरात' अथवा ''चल समीर, चल कलि दल'', गीत विश्व मे एक ही सत्ता अथवा प्रवाह का प्रतिपादन करते है। सृष्टि के प्रवाह अथवा गीत की जो धारणा निराला मे मिलती है, मानव मे उसका सम्बन्ध रवीन्द्र की अपेक्षा स्वामी विवेकानन्द अथवा रामकृष्ण से अधिक है। अपने प्रारम्भिक दार्शनिक निबन्ध 'प्रवाह' मे निराला ने ब्रह्म और महाशक्ति की कल्पना की अभिन्नता को स्वीकार करते हुए महाशक्ति की कल्पना से ससार की सृष्टि मानी है और कल्पना की चचलता अथवा गति के कारण उसे प्रवाह कहा है उसे परिवर्तन द्वारा गति प्राप्त होती है।[३]

रवीन्द्र के सम्बन्ध मे श्री सुधाकर चट्टोपाध्याय का कहना है कि सीमा और असीम की मिलन लीला नर-नारी के विरह मिलन लीला के रूपक द्वारा परिव्यक्त हुई है। 'जीवन-देवता' कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम हैं जिसके साथ जीवन की आँख-मिचौनी चली है। यह अनुभूति रवीन्द्रनाथ से संक्रमित होकर छायावादी कविता में आयी है। उनके मतानुसार रवीन्द्रनाथ के जीवन देवता अथवा जीवन देवी के साथ जिस लीला व्यापार ने रवीन्द्र काव्य को विशिष्टता दी है, वही लीला यहां अर्थात् निराला में भी परिलक्षित होती है।[४] भाव साम्य की

---

१. गीतांजलि पृष्ठ १२४
२ परिमल, पृष्ठ १९१, अनामिका, पृष्ठ ४
३. सग्रह- पृष्ठ ११-१२
४. आधुनिक हिन्दी साहित्य बांगलार स्थान, खण्ड-१, पृष्ठ ७६, १०९

दृष्टि से उन्होने 'गीतिका' का ''कब से मै पथ देख रही प्रिय, उर न तुम्हारी रेख रही प्रिय'', उद्धृत किया है।

सुकुमार सेन के मतानुसार आध्यात्मिक प्रतीक 'आमि-तुमि ओ' रवीन्द्र के लिए क्रमश अन्तर्यामी जीवन देवता का ही द्वैत रूप है, जो अद्वैत का ही दृष्टि भेद है।[१] निराला ने जहॉ सूर्य, किरण और बादल के माध्यम से 'तुम और मैं' की अभिव्यक्ति की है, वहॉ रवीन्द्र का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

'तुम और मै' के लिए रवीन्द्र ने 'पथ' और 'रथ' के प्रतीक का भी व्यवहार किया है। निराला मे भी इस प्रतीक को हम विद्यमान पाते है। उसके आगमन के लिए रवीन्द्र ने रथ का प्रयोग किया है जिसकी ध्वनि वे मुख्य रूप से बादलो मे सुनते हैं, स्वागतार्थ शंख ध्वनि करने को भी कहते हैं।[२] रवीन्द्र के 'आमि भिक्षा करे फिरते छिलेम, ग्रामेर पथे पथे, तुमि जखन चले दिले तोमार स्वर्ण रथे' के सदृश 'अणिमा' की एक रचना मे निराला ने लिखा है- ''मैं बैठा था पथ पर, तुम आए चढ़ रथ पर।''[३] रवीन्द्र ने श्रावण के अन्धकार में मेघ के रथ पर उसका आगमन देखा है, और निराला का ज्योतियान भी तम के ऊपर सज-धज कर आता है।[४] जहॉ सब में अधम और दीन से भी दीन रहते हैं वहीं ईश्वर की स्थिति रवीन्द्र और निराला दोनो ने देखी है।[५]

मौन द्वारा सत्य अथवा आनन्द की अभिव्यक्ति रवीन्द्र और निराला दोनो ने की है। इसी की अनुभूति श्री रामकृष्ण और विवेकानद ने 'समाधि' में की थी

---

१ निराला काव्य पर बगला प्रभाव, पृष्ठ १०७-१०८
२ गीतांजलि, गीत पृष्ठ ५०, ५१
३. अणिमा, पृष्ठ १६
४. गीतांजलि, पृष्ठ ४५, बेला, पृष्ठ ७७
५. गीतांजलि, गीत-१, १०, आराधना, पृष्ठ ३५, अणिमा- पृष्ठ १६

और इसी के अक्षय स्वरूप को स्वीकार कर रवीन्द्र ने उसमे सहृदय की मुखरता की सृष्टि प्रत्यक्ष की है।[१] निराला ने दर्शनशास्त्र मे इस मौन रूपी सत्य, शिव को ही 'अवाङ् मनसोऽगोचरम्' बताया है। 'एक प्रणय मे' प्राणो के मिलने पर मौन ही मधुमय गान हो जाता है,[२] 'परिमल' मे उन्होने लिखा है। 'परिमल' की पहली रचना 'मौन' मे निराला ने प्रियतम और प्रिया को एक पथ का पथिक कहा है, जीवन को चुप, निर्द्वन्द्व चित्रित कर कवि ने मौन को मुखर किया है-

"मौन मजु हो जाय,
भाषा मूकता की आड़ में
मन सरलता की बाढ में,
जल बिन्दु सा बह जाय।"[३]

दिशा मुक्ति से प्राणो के विजयी होने पर ही मौन मे सुघरतर अमर गान फूटते हैं।[४] अपने 'मोह-मलिन मन' की उपमा निराला ने भी खग से दी है। जो प्रसुप्त जग को जागरण के गीत से रग देता है।[५]

जिस प्रकार रवीन्द्र ने महालक्ष्मी द्वारा भक्त के कठ में वरमाल्य डालने और उसके कर पद्म स्पर्श से दु ख और अमगल का नाश चित्रित किया है और एकमात्र प्रेम द्वारा जीवन की प्रेम तृष्णाओ की तृप्ति दिखलाई है, उसी प्रकार निराला की 'श्रृगारमयी'[६] उन्हे अपना हार पहना अनुराग परागों में श्रृगार खोजने

---

१ चयन, पृष्ठ १०५-१०६,
'देखियारे आखि पाखि धाम' इस बात में बलरामदास ने क्या नहीं कह दिया? व्याकुल दृष्टि की व्याकुलता केवल वर्णन से कैसे व्यक्त होती? दृष्टि पंछी की तरह उड़ चली है, इस क्षण में अभिव्यक्ति की दारुण आकुलता एक क्षण में शान्ति पा लेती है-'रवीन्द्रनाथ के निबन्ध' पृष्ठ २५३ 'साहित्य का तात्पर्य' निबन्ध।
बलरामदास पन्द्रहवीं शताब्दी के बगाल के वैष्णव कवि थे जो नित्यानन्द के शिष्य और चैतन्य के साथी थे। उसकी पदावली भी बगला में प्रसिद्ध है- 'रवीन्द्रनाथ के निबन्ध', भाग-१, पृष्ठ २००.

२. परिमल, पृष्ठ ६४

३ परिमल, पृष्ठ २६

४. बेला, पृष्ठ ६६

५. गीतिका, पृष्ठ ४७

६ माधुरी, १३ जनवरी, १६२४, पृष्ठ ६७७

को कहती है। यही भाव 'कविप्रिया' और 'कविता'[1] मे भी व्यक्त है। अनामिका मे सकलित 'प्रिया से' और 'कविता के प्रति'[2] भी इसी श्रेणी की रचनाए है।

असीम से मिलन की अनुभूति को निराला ने ही 'धारा' अथवा 'तरंगों' के माध्यम से व्यक्त किया है। परन्तु निराला में प्रपात के मचलते हुए निकले अचल के चचल क्षुद्र प्रपात के प्रवाह की दिशा अधकार से प्रकाश की ओर है। जड़ का सारा अज्ञान समझ वह उसके अन्तर में अपनी तान भर कर अन्जान की ओर इशारा करके चल देता है। विप्लवी बादल की तरह अन्धकार से खेलने वाले 'प्रपात के प्रति' निराला की इस रचना मे रवीन्द्रनाथ के 'निर्झर स्वप्न भग' की झलक डा० रामविलास शर्मा को दिखाई देती है।[3]

'उच्छृखल' का चित्रण रवीन्द्र ने किया है जिसमें कुल क्रियाओ का समाहार अधकार अथवा शून्य में ही विद्यमान है। 'चाइ-चाइ' रुदन करने वाले और सब के पास 'हाहाकार' रखकर जाने वाले इस 'झड़ेर जीवन' के सम्बन्ध में उनका प्रश्न हैं- 'आजाना आधार सागर बहिया, मिशाये जाइबे कोथा?' निराला के अनुसार अपने हृदय के इस चित्र मे रवीन्द्र ने अपनी रंगीन कल्पना द्वारा जीवन की ज्योति भर दी है। कवि की वर्णना की शक्ति के रूप में उन्होंने 'चाइ-चाइ' शब्दो का उल्लेख किया है जिसमें आधी की साय-साय की ध्वनि के साथ उसकी 'अर्थद्युति' में व्याकुल प्रार्थना को सजीव देखा है। 'हाहाकार' में भी आधी का यथार्थ शब्द और उच्छृंखलता का अर्थ गौरव भरा हुआ है। निराला के अनुसार शिव

---

१ मतवाला, २० अक्टूबर, २३, पृष्ठ ८५, परिमल, पृष्ठ १२३
मतवाला १० नवम्बर, २३, पृष्ठ १३३ 'उस पार।'

२. अनामिका, पृष्ठ ४२, मतवाला २६ मार्च २४, पृष्ठ ५५३
अनामिका पृष्ठ १४४, सुधा मार्च ३८, पृष्ठ १०७

३ 'निराला' पृष्ठ ५२

और सुन्दर के समावेश के कारण ही यह उच्छृखलता सबको प्रिय है तथा सब की सहानुभूति खींच लेने वाली है।[1]

रवीन्द्र ने जननी को अन्न वितरण के कारण 'चिरकल्याणमयी' कहा है।[2] निराला ने भी "जागो जीवन धनिके। विश्वपण्ण प्रिय वणिके।"[3] गीत में जीवन मे धनिका रूप से अवस्थित लक्ष्मी के जागरण का आह्वान किया है। भारत की प्रकृति के अनुकूल ओकार ध्वनि के वर्णन द्वारा उसको रवीन्द्र ने सर्वजयी बताया है। विश्व के मगल शख के उपरात उन्होने 'भारतेर श्वेत हृदि-शतदले दाडाये भारती तव पदतले, सगीत ताने शून्ये उथले अपूर्व महावाणी' लिखा है। आर्य महर्षियो का आदर्श और वेदशास्त्रो द्वारा प्रदर्शित पथ ग्रहण करने के कारण रवीन्द्र की इन रचनाओं मे भारतीयता, उपदेश, कवित्व, तीनो की सहज स्थिति है यह निराला का विचार है।[4] स्वय निराला ने भी जननी रूप मे महाशक्ति का आह्वान कर उसके प्रति रूपमय माया तन धर भारत की पृथ्वी पर उतरने और श्रेष्ठ नरों को पैदाकर नवीन शक्ति प्रसार की तथा उनके मानस शतदल पर अपने चारु चरण युग रख व्यक्त दिव्य प्रकृति माता के अव्यक्त सत्ता में तिरोधान की कामना व्यक्त की है।[5] गीताजलि के एक गीत में यद्यपि रवीन्द्र ने भी रूपहीन, ज्ञानातीत, भीषण 'शकति धरेछे आमार काछे जननी मूरति'[6] लिखकर शक्ति का जननी रूप से आह्वान किया है, परन्तु निराला में इस कल्पना अथवा भावधारा की स्थिति निश्चित रूप से विवेकानन्द और रामकृष्ण की प्रेरणा से है।

---

१ चयन, पृष्ठ १०७, १११, ११२
२ गीतिका, पृष्ठ ८३
३. गीतिका, पृष्ठ ९७
४. रवीन्द्र कविता कानन, पृष्ठ ५२-५३
५. गीतिका, पृष्ठ ३६
६. गीतांजलि, पृष्ठ गीत- ६५

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि भावना और अभिव्यजना दोनो क्षेत्रो मे 'निराला' ने रवीन्द्र से प्रेरणा ग्रहण की है, भावना की दृष्टि से अवश्य प्रेरणा का यह स्रोत सीमित है, परन्तु अभिव्यजना की दिशा में नि·सदेह रवीन्द्र का प्रदेय प्रभूत है। निराला का विद्रोही दृष्टिकोण उनकी मौलिकता को अक्षुण्ण रखता है। रवीन्द्र के प्रति उनकी दृष्टि आलोचक की है और अस्मिता प्रबुद्ध रही है। यही कारण है कि रवीन्द्र की प्रशसा के साथ उनका विरोध भी 'निराला' के लिये उतना ही प्रेरणाप्रद रहा है, जितनी उनकी प्रशसा। परन्तु फिर भी रवीन्द्र 'निराला' की आध्यात्मिक प्रेरणा का मूल स्रोत नहीं बन सके है, क्योकि निराला को वही कवि पूर्णत प्रभावित करता है जो ज्ञानी अथवा सन्यासी हो, दूसरी ओर ज्ञान और सन्यास की अवधारणा के साथ कला विषयक श्रेष्ठता भी हम सलग्न पाते हैं, अतः प्रेरणा के सभी विविध स्रोत एक सीमा का स्पर्श करने वाले हैं। रवीन्द्र से ग्रहीत प्रेरणाओ में युग प्रवर्तन उल्लेखनीय है, जो अपने में अभिव्यजना और भावना सबको समाहित करके चला है और जिसे 'निराला' ने अपने विद्रोह द्वारा विशिष्टता प्रदान की है।

(इ) तुलसीदास

निराला के सन्दर्भ में श्री रामकृष्ण विवेकानन्द एव रवीन्द्र बंगाल के इन उभय प्रेरणा स्रोतों पर विचार करने के उपरान्त हम निराला के काव्य के प्रेरणा स्रोत तुलसीदास से प्राप्त प्रेरणा पर आते हैं। जिनका विवेचन बंगाल से प्राप्त प्रेरणाओं के समक्ष लगभग उपेक्षित सा रहा है। यह तथ्य इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि विवेकानंद की आध्यात्मिक अथवा रवीन्द्र की साहित्यक कृतियों से परिचय प्राप्त करने के पूर्व ही घर की संस्कृति, अपनी प्रवृत्ति और रुचि के

अनुकूल तुलसी कृत रामचरित मानस का अध्ययन अनुशीलन निराला ने किया था जो सस्कार अथवा प्रवृत्ति रूप मे उनमे दृढ हो चुका था।

निराला का जन्म पुरानी सस्कृति की गहरी छाप लिए एक ऐसे परिवार मे हुआ था जहॉ महावीर के प्रति असीम श्रद्धा थी।[1] अपने यहॉ की सस्कृति के अनुरूप बचपन से सतो की सूक्तियो पर भक्ति करते हुए विशेष रूप से ईश्वरानुरक्त होने और भिन्न-भिन्न रूपो की प्रकृति को देखते रहने से स्वभावत जगत के करण-कारण भगवान पर भावना बधने का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है।[2] 'कुल्लीभाट' लिखते हुए साधु वाले प्रसग मे तो निराला ने स्पष्ट लिखा है-''खास तौर से मै महावीर को अधिक प्यार करता था, राम को कम।[3] 'भक्त और भगवान' मे भी वे लिखते है कि ''महावीर जी की सुन्दर मूर्ति देखकर भक्त को तुलसीदास की याद आई। महावीर जी, तुलसीदास जी और श्री रामायण से हिन्दी भाषी पठित हिन्दू मात्र का जीवन सम्बन्ध है। मन सोचने लगा तुलसीदास की सिध्दि का कारण महावीर जी हैं। पत्थर की उस मूर्ति पर प्राणों का मुग्ध होना उनकी दृष्टि में एक 'मूर्ख' संस्कार था, जिसे ब्रह्मभाव के लोग आज कुसंस्कार कहते हैं, वृहत्तर भारत के निर्माण के लिए प्रयत्न पर है।''[4] निराला के सम्बन्ध में शब्द चित्र अंकित करते हुए डा० शर्मा की पंक्तियों में इसी प्रकार का संकेत मिलता है। आपने लिखा है-''बैसवाडे के किसान की रूढ़िप्रियता, धर्मिकता भी उसमें है। सामाजिक उच्छृंखलता के होते हुए भी निराला घोर धार्मिक व्यक्ति हैं और उसके व्यक्तित्व को किसी ओर से खतरा है तो धर्म की ओर से।[5]

---

१ निराला, पृष्ठ ३७, डा० रामविलास शर्मा
२. चतुरी चमार, पृष्ठ ५४, ७१
३. कुल्ली भाट, पृष्ठ ८०
४. चतुरी चमार - पृष्ठ ७२
५. विराम चिन्ह- पृष्ठ ८०

'भक्त और भगवान' कथा मे निराला ने महावीर की सेवा के लिए उन्हे रामायण पढकर सुनाने की बात लिखी है, परन्तु रामायण के ऊँचे गूढ अर्थ अभी मस्तक मे विकास प्राप्त नहीं कर सके।[1] यहीं महिषादल में स्वामी प्रेमानन्द को जिनमे ब्रह्मचारी महावीर उनके राम, देवी और समस्त देव दर्शन समावृत हो गए थे- रामचरित मानस से सुतीक्ष्ण की कथा का पाठ कर सुनाने और फिर महावीर की वीर मूर्ति मे भारत को साक्षात करने के बाद स्वामी प्रेमानन्द जी की प्रशान्त मूर्ति के भक्त के सुन्दर मन मे आकाश से भी ऊँचे उडने का उल्लेख निराला ने किया है।[2] 'उद्‌बोधन' कार्यालय बाग बाजार मे रहते हुए निराला ने श्री परमहस देव की धर्म पत्नी श्री सारदामणि देवी के कमरे मे तुलसीकृत रामायण पढकर स्वामी सारदानन्द से प्रसाद मे दो रसगुल्ले पाने की बात लिखी है, और इस समय उनकी स्थिति थी-"मन बडा प्रफुल्ल, फूल सा खिला हुआ, हल्का, गोस्वामी तुलसीदास जी की भारतीय सस्कृति मन को ढके हुए थी।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से इस तथ्य का स्पष्टीकरण होता है कि अपने घर के अहाते मे तैयार बैसवाडी संस्कारो के अनुकूल निराला के हृदय में महावीर के प्रति असीम श्रद्धा का भाव था यहॉ तक कि वे तुलसीदास की सिद्धि का श्रेय भी उन्हीं को देते थे। अपनी श्रद्धा की इस भावना में निराला स्वामी विवेकानंद के समकक्ष हैं, यह हम देख चुके हैं। स्वामी जी का आदर्श भी महावीर की सेवा और उनका सिंह विक्रम भाव था। मिशन के सन्यासी स्वामी प्रेमानन्द और सारदानन्द तो इन्हें महावीर का अवतार ही प्रतीत होते थे। इन सन्यासियों के सम्पर्क में आकर तुलसीदास और उनकी रामायण के प्रति निराला की निष्ठा

---

१ चतुरी चमार- पृष्ठ ७७

२ चतुरी चमार- पृष्ठ ७८-७९

३. चतुरी चमार- पृष्ठ ५७

भावना को और भी दृढ आधार मिला। रामायण के जो ऊँचे गूढ अर्थ पहले अस्पष्ट थे, इस सम्पर्क से यह स्पष्ट हो गए और यही कारण है कि निराला केवल सन्यासी को ही ज्ञानी मानते है। मात्र रामचरितमानस के विवेचन के आधार पर ज्ञानी रूप तुलसीदास की निराला द्वारा प्रतिष्ठा का रहस्य भी यहीं निहित हैं, जिनकी भारतीय सस्कृति से निराला का मन आच्छादित रहता था।

यद्यपि निराला ने अपने दार्शनिक और साहित्यिक दोनो प्रकार के निबन्धो में यत्र-तत्र तुलसी का उल्लेख किया है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से कुल मिलाकर उन्होंने तुलसी और उनकी रामायण पर पाच लेख लिखे है। 'समन्वय' के नवम अंक में प्रकाशित 'तुलसीकृत रामायण मे अद्वैत तत्व' तुलसी और रामायण पर उनका पहला निबन्ध था दूसरा लेख ज्ञान और भक्ति पर 'गोस्वामी तुलसीदास' था। जो 'समन्वय' के द्वितीय वर्ष के पचम अक मे निकला था। 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' शीर्षक तृतीय निबन्ध 'समन्वय' के छठे वर्ष के आठवे अक में छपा था। इसके पहले ही 'अतीत' २३ की 'माधुरी' में 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निराला बता चुके थे। तुलसी और रवीन्द्र इन दो महाकवियों पर उनका तुलनात्मक लेख सन् २६ के मतवाला मे छपा था। तुलसीकृत रामायण पर उन्होंने काफी लम्बे अन्तराल के उपरान्त १४ अप्रैल ४६ के देशदूत में भी लिखा था। इस श्रृंखला की अंतिम कड़ी ६ अगस्त ५६ को अर्पित 'तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि' है।

इन लेखों के अतिरिक्त तुलसी पर स्वतन्त्र रूप से निराला ने सन् ३५ में १०० छंदों का एक प्रबन्ध काव्य लिखा था, जो फरवरी से जुलाई तक के सुधा के अंकों में निकला था। इस काव्य में तुलसी के प्रति निराला की भावसिक्त दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्रभाव होने के साथ कवि की सांस्कृतिक चेतना की

अभिव्यक्ति भी है। इस काव्य की रचना के पूर्व निराला ने रामचरितमानस के कुछ अशो की टीका और उसकी महत्वपूर्ण अर्न्तकथाए लिखी थीं। इसका कारण निराला ने यह बताया कि आज तक हिन्दी में रामायण पर उन्होंने जितनी टीकाए देखी है, उनमें कोई भी टीका दमदार नहीं थी और यही कारण है कि साधारण मनुष्यों तक गोस्वामी जी का 'अपार वेदान्त सत्य' नहीं पहुंचता है।[1] कवि कृतियों में उनकी रामायण के उच्च स्थान की उचित रीति से आलोचना नहीं हुई है, इस सत्य की ओर निराला ने हमारा ध्यान अपने पहले ही लेख में आकृष्ट किया था।

तुलसी को प्राप्त करने के हिन्दी के सौभाग्य और उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामायण' जिसकी उचित रीति से समालोचना अभी तक नहीं हुई है, का उल्लेख करके निराला की स्थापना है कि "रामायण के अर्थ गाभीर्य, भाव माधुर्य, श्रुति लालित्य और शब्द योजना आदि काव्य गुणो का ज्ञान, रामायण की श्रेष्ठता के अनुरूप, उसी को होगा जो स्वयं अच्छा कवि हो, अच्छा समालोचक हो, ईश्वरानुरागी हो और भव बन्धनों से अलग हो। देश के गुरु, स्थानीय संन्यासी देवताओं से इस ओर ध्यान देने का उनका निवेदन है, क्योंकि गुसाईं जी के जिस मन की मूर्ति रामायण है उसकी आलोचना वही कर सकता है जो मनोरत्न का जौहरी हो।"[2] 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' लेख में निराला ने लिखा है-"जब तक हम उनके यथार्थ स्वरूप जिस पर छाया रामायण की है उसे नहीं पहचान सकते, हमारा वह दर्शन, वह परिचय उनके सम्बन्ध में बिल्कुल अधूरा है।[3] तुलसीकृत रामायण का आदर्श बताते हुए गोंसाईं जी की साधना से प्राप्त अनुभव कूट-कूट कर रामायण में भरे होने के कारण उसमें 'शब्द थोडे भाव

---

१. प्रबन्ध प्रतिमा - पृष्ठ १५१, माधुरी, १८ अगस्त, २३, पृष्ठ ५१
२. सग्रह-पृष्ठ १७
३. संग्रह - पृष्ठ २८-२६

गहन' होने का उल्लेख निराला ने किया है जो स्वभावत समझ मे जल्दी नहीं आते और उनके समझने मे कोरी विद्वता से काम नहीं चलता, कुछ साधना भी चाहिए।[1] स्पष्ट है निराला रामायण जैसी आध्यात्मिक पुस्तक का पूर्ण अधिकारी मात्र साहित्यिक को नहीं सन्यासी को समझते थे। तुलसी उनके लिए साहित्यिक से पहले ज्ञानी-सन्यासी थे और निराला तुलसी को समझने वाले साहित्यिक सन्यासी थे।

निराला की दृष्टि मे गोस्वामी जी सिद्ध पुरुष थे, और सिद्ध वह है जिसने मनुष्य जीवन के वेद सिद्ध सिद्धान्त को अपनी साधना और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त कर लिया है जिसने जीवन और मृत्यु के प्रश्न को हल कर लिया है, जिसे मनुष्य जीवन की जटिल से जटिल हर एक समस्या का सामना करना पडा और अपने साधन सामर्थ्य से उसके रहस्य का भेद समझाना पडा है।[2] तुलसी ही एकमात्र ऐसे महापुरुष है जिन्हें निराला ने श्रीदेव रामकृष्ण परमहस के अतिरिक्त सिद्धि सम्पन्न अथवा अवतार पुरुष स्वीकार किया है। पूर्ण ज्ञान की जिस अवस्था का निदर्शन परमहस ने अपनी मौन समाधि द्वारा दिया था, वही अद्वैत ब्रह्म अथवा पूर्ण शक्ति श्री गोस्वामी जी का भी लक्ष्य था जो स्पर्द्धा अथवा प्रतिद्वन्द्विता द्वारा साध्य नहीं है। स्पष्ट है कि केवल तुलसी ही ज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं और श्री रामकृष्ण के समकक्ष स्थान पाने के अधिकारी हैं। निराला की इस मान्यता के मूल में उनके संस्कारों का उनकी आस्तिक दार्शनिक और विरोधी प्रवृत्तियों का सक्रिय सहयोग है।

तुलसीदास की केवल एक ही कृति 'रामचरितमानस' के आधार पर निराला ने उनके ज्ञानी रूप अथवा काव्य के अद्वैत प्रतिपाद्य को अपने विविध

---

१ माधुरी - १८ अगस्त, २३ पृष्ठ ५२
२. चयन - पृष्ठ १२८, १३०

लेखो मे स्पष्ट किया है कि उनका भीतरी भाव, ज्ञान और भक्ति के ऐक्य का था। ज्ञान की आवश्यकता को वे छोड नहीं सके है, वरन् ज्ञान को ही भक्ति का प्रथम साधन बताते है और उसी को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ भी कहा है।[1]

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में 'तुलसीदास' में निराला जी ने इतिहास पर नई दृष्टि डाली है। मध्यकाल मे समाज का जो पतन हुआ और पतन में शूद्रो पर जो अत्याचार हुए वह इस कथा की पृष्ठभूमि है। मूल चित्र गोस्वामी तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व का है। तुलसीदास का युद्ध उनके पुराने सस्कारों और उस समय की दासता को अपनाने वाली सस्कृति से है। इस तरह तुलसीदास एक विद्रोही के रूप मे आते हैं।[2] बद्ध सस्कारों की सतहों को पार करते हुए तुलसी के मन का उर्ध्वगमन 'परिमल' की दार्शनिक रचना 'जागरण' के भावोन्नयन के समकक्ष है, जिसे नन्ददुलारे बाजपेयी जी ने वास्तव में निराला जी के अपने भावोन्नयन का भी सम्पूर्ण परिचय कहा है।[3] 'प्रेयसी' और 'रेखा' आदि रचनाओं मे भी भावात्मक यही परिवर्तन अभिव्यक्त हुआ है जिसका सीधा सम्बन्ध वेदान्त दर्शन से है।

निराला ने तुलसी के विचारों में 'रामचरितमानस' का संकेत दिया है। अन्त्यजों के प्रति तुलसी का यह प्रगाढ़ स्नेह हृदय, धर्म की प्रबलता पर विकसित रामानुज के वैष्णव धर्म के कारण था, जिसके अन्तर्गत जाति-पांति का भेद गुरु के यहां नहीं था, यद्यपि समाज में बर्ताव घृणाजन्य ही रहा।[4] मध्यकालीन समाज की इस मूल समस्या को तुलसी के सदृश निराला भी पहचानते थे। 'शिवा जी का

---

१ चयन - पृष्ठ १२९-३०-३१

२ निराला - पृष्ठ १०२, संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ २६३

३. कवि निराला- पृष्ठ १४६

४. प्रबन्ध प्रतिमा - पृष्ठ १७५-१७६

पत्र', 'सहस्राब्दी', 'उद्‍बोधन' आदि रचनाए तथा हिन्दू समाज और वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी निराला के निबन्ध भी उनके इसी अभिज्ञान के प्रमाण है जहॉ उन्होने जातीय जीवन की शक्ति का आह्वान किया है।

निराला ने तुलसी के सम्बन्ध में मानस और उसके ज्ञानपक्ष को लेकर ही उनकी महत्ता का प्रतिपादन किया है और उनके आत्म निवेदन और वेदना आदि पर कुछ न लिखकर उनका जो एकागी चित्र प्रस्तुत किया है, उसके मूल मे नि:संदेह रवीन्द्र से प्रतिस्पर्द्धा की भावना विद्यमान थी। तुलसी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ही केवल निराला ने उनकी 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' आदि इतर ग्रन्थ समूह का उल्लेख कर उन्हें सामाजिक चारुता लाने मे कम सक्षम नहीं कहा है। रामायण की उचित समालोचना के लिए जब वे सन्यासियो का ध्यान आकृष्ट करते हैं, अथवा स्वामी सारदानन्द से जब वे बातचीत करते हैं, तब अपने को रामायण जैसी आध्यात्मिक पुस्तक पर लिख सकने की योग्यता का अधिकारी समझते हैं, अर्थात् निराला भी ज्ञानी तुलसीदास की परम्परा के ही कवि हैं।

निराला के तुलसीदास के संबध में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "तुलसीदास में उन्होंने जिस व्यक्ति की कल्पना की है वह निराला के अधिक निकट है तुलसी से कम।" साथ ही निराला में अन्य विरोधी तत्वों का समाहार होने कारण उनके व्यक्तित्व को उनके नायक से कहीं अधिक वैविध्यपूर्ण कहते हैं।"[1]

विद्रोही निराला 'तुलसीदास जैसे सर्वसमन्वयवादी कवित्व को अपना आदर्श कैसे बना सके, इस प्रश्न का उत्तर डा० जगदीश गुप्त की 'निराला' की

---

१ संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ २६२-२६३, डा० रामविलास शर्मा

शक्तिप्रियता मे मिलता है। उन्होने लिखा है-''राम की शक्तिपूजा'' के लेखक ने यदि रामभक्त तुलसी को सास्कृतिक सूर्य के रूप मे प्रस्तुत किया तो आश्चर्य ही क्या है? वह अगर उसके पहले शीतलच्छाय विशेषण लगाना भूल जाता तो मै मानता कि उसके भीतर का ताप जवाब दे गया। 'राम' और 'तुलसी' दोनों के निराला द्वारा प्रस्तुत रूपो मे उनका निजी सवेदनशील एव गरिमामय व्यक्तित्व कितनी मात्रा मे अन्तर्निहित हो गया है, यह मर्मज्ञो से छिपा नहीं है।[1] यह उल्लेखनीय है कि 'निराला' के आदर्श श्री रामकृष्ण भी धर्म के क्षेत्र मे समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते थे, और इन्ही की परम्परा मे 'निराला' ने तुलसी की गणना भी की है। 'निराला' की शक्तिप्रियता का रहस्य भी यहीं निहित है।

सन्यासी महाकवि तुलसीदास 'निराला' के आदर्श थे इसमे कोई सन्देह नहीं। तुलसी का जो आदर्श और एकागी चित्र 'निराला' ने प्रस्तुत किया है, उसके मूल में मिशन के सेवा और त्याग के सिद्धान्त के साथ रवीन्द्र के प्रति प्रतिस्पर्द्धा का भाव इन द्विविध सूत्रो की स्थिति है। तुलसी के विरोध मे 'निराला' ने लिखा हो यह देखने मे नहीं आता। यह तथ्य श्री रामकृष्ण के सदृश तुलसी पर भी 'निराला' की प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति भावना का परिचायक है। यह सब होते हुए भी तुलसी 'निराला' की पूरी प्रेरणा नहीं बन सके हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि तुलसी मे 'निराला' को वह श्रृगार, वैभव और विलास नहीं मिला, जो कालिदास रवीन्द्र अथवा पद्माकर की विशेषता थी। अपने सम्बन्ध में निराला ने यह स्वयं लिखा है कि वे केवल ईश्वर के नहीं, सौन्दर्य वैभव और विलास के कवि भी है, और क्रान्तिकारी भी।[2] श्रृंगार के संदर्भ में 'निराला' ने

---

१. धर्मयुग, १२ फरवरी, १६६७, पृष्ठ १६

२ कुल्लीभाट, पृष्ठ १००

मुक्त कण्ठ से रवीन्द्र की श्रेष्ठता स्वीकार की है, यह हम देख चुके है, परन्तु यहा भी अपने आदर्श कवि की प्रतिष्ठा को उन्होने आघात नहीं पहुंचाया है। रवीन्द्र के श्रृगार और सौन्दर्य की सीमा मानवीय असीमता तक मानकर उन्होने तुलसी के आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए उनके दिव्य भावो का उल्लेख किया है। तुलसी मानव सौन्दर्य के साथ ही कुछ और देखते हैं, जिसे वे उस सौन्दर्य से अधिक महत्व देते है, उससे बडा भी मानते है।'' इसका प्रमाण ऋषि पत्नी का सौन्दर्य लिए उनका अहिल्या का चित्रण है, जिसमे उन्होने भगवद् भक्ति का आभास देखा है। उनके सभी चित्र, वह कितने ही सुन्दर क्यों न हो भक्ति के गुरु भार से दबे रहते है, भरत के प्रसग के उदाहरण द्वारा 'निराला' ने यह स्पष्ट किया है।[१]

तुलसी के श्रृगार वर्णन के सबध मे 'निराला' ने पहले ही स्पष्टत लिखा था, 'साधारण नारी रूप का चित्रण जो गृहस्थो के सासारिक रसों की तरह भोग्य हो उन्होने नहीं किया, शायद महात्मा होने के कारण शरीर संस्पर्श की ओर उन्हें बड़ी सतर्क दृष्टि रखनी पडी है। जब कभी इस तरह का संस्पर्श आया है उन्हें उसे दिव्य रूप ही देना पडा है।[२] इसका कारण यह है कि दिव्य भावना और कला, सत्साहित्य और सगीत, जाति के जीवन और अनन्त को धारण करने के मूल आधार हैं, जिन कृतियो मे दिव्य भावो का विकास हुआ है वे जातीयता के विकास का यथार्थ मार्ग है और आदर्श कला से भी रहित नहीं हैं।

स्पष्ट है कि ब्रजभाषा साहित्य के ज्ञान मिश्रित भक्ति साहित्य के प्रणेता तुलसीदास के ज्ञान और भक्ति को जहां निराला ने स्वीकार किया है और

---

१. सग्रह, पृष्ठ १४८-१४६

२. संग्रह पृष्ठ १३५

'अणिमा' एवं उसके बाद की रचनाओ मे भक्ति के स्तरो का ही विस्तार किया है, वहीं सौन्दर्य दर्शन की प्रारम्भिक प्रेरणा जो सस्कार रूप से उनमे दृढ हो चुकी थी उसके कारण श्रृगार और सौन्दर्य भी उनके लिए त्याज्य नहीं है। यही कारण है कि तुलसी निराला के लिए आदर्श तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व होते हुए भी उनकी श्रृगारादि भावनाओं की पूरी प्रेरणा नहीं बन सके हैं।

(ई) निराला का अपना व्यक्तित्व

निराला का व्यक्तित्व उनके काव्य की मूल आन्तरिक प्रेरणा कहा जा सकता है और व्यक्तित्व का सहज सम्बन्ध व्यक्ति तथा उसके पारिवारिक एव सामाजिक परिवेश से होने के कारण इसका समावेश सास्कृतिक अथवा सामाजिक प्रभावो से अलग जीवन की प्रेरणाओ के अन्तर्गत किया जा सकता है।

अपनी कृतियों में निराला ने प्रसंगानुकूल अपने विषय में जो सूचनाएं दी है, उनसे उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा का ज्ञान होता है।[1] कुल्लीभाट में उन्होंने स्वीकार किया है कि वे बचपन से आजादी पसन्द थे, वह दबाव नहीं सहन कर सकते थे जिसकी वजह न मालूम हो, शुरू से विरोध से सीधे चले थे। सोलह सत्रह वर्ष की उम्र से ही भाग्य के विपर्यय और जीव नहीं जीवन के पीछे भागने अतः उसके रहस्य से अनभिज्ञ न रहने का उल्लेख भी उन्होंने किया है। इसी कृति में आगे चलकर उन्होंने अपने को ईश्वर सौन्दर्य वैभव और विलास का कवि कहा है, फिर क्रान्तिकारी। 'सुकुल की बीबी' में भी निराला ने अपने प्रकृति की शोभा देखते रहने, कवि हो जाने और तभी परीक्षा में असफल हो जाने के

---

१. कुल्ली भाट, पृष्ठ २८, ३३, ७०-७१, १००

कारण निरन्तर प्रश्नो की माला सामने रहने का उल्लेख किया है।[1] 'गीतिका' की भूमिका मे भी बचपन मे निष्काम भाव से सौन्दर्य दर्शन की प्रेरणा, जो क्रमश सस्कार रूप से दृढ हुई, के साथ घर के अवधी कनौजिया और बाहर ससार द्वारा निर्मित विरोध मूलक सस्कारो का उल्लेख निराला ने किया है। गीत और कला के विवेचन मे भी निराला ने स्वीकार किया है कि उनके जीवन में सभी रसो के स्रोत माता-पिता की दी वाग्विभूति बैसवाड़ी से फूटकर निकले हैं, यहीं उन्होने भाव, भाषा और छंद की उल्टी गगा बहाने की बात लिखकर इसे प्राणो के अनुकूल कहा है।[2] परिमल मे मुक्त छन्द को वन्य प्रकृति और अलाप की तरह कहने मे भी उनकी प्राकृत स्वच्छदता का परिचय मिलता है।[3] स्वामी[4] सारदानन्द पर लिखते हुए निराला ने सतो और ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति के बचपन के आस्तिक संस्कारो, अपनी दार्शनिक प्रवृत्ति और उसके साथ बढने वाली विरोधी शक्ति का उल्लेख किया है। 'भक्त और भगवान'[5] भी उनकी इन्हीं प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालने वाली कथा है, जिससे निराला की महावीर और तुलसी के प्रति श्रद्धा और भक्ति का, श्रीरामकृष्ण मिशन के सन्यासियों के प्रति विनीत भाव का परिचय प्राप्त होता है।

निराला के सम्बन्ध में स्वर्गीया पत्नी से प्राप्त प्रेरणा स्मरणीय है। 'गीतिका' इसी 'सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया प्रकृति' को समर्पित है। पत्नी के हिन्दी ज्ञान और स्वर से स्वयं लज्जित होकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प का उल्लेख

---

१ सुकुल की बीबी
२ प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ १६८-१६६
३. परिमल की भूमिका, पृष्ठ १२
४ चतुरी चमार, पृष्ठ ५३-५५
५. चतुरी चमार संग्रह की अन्तिम कहानी।

कर समर्पण मे उन्होंने लिखा है-''जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी स्तब्धता को देखकर मुस्कुरा देती थी, जिसने अन्त मे अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृगार की पूर्ति की।[१] 'काव्य साहित्य' लेख में भी निराला ने पत्नी की दिव्यता और उनके असमय दिव्यधामवास के कारण अपने जीवन के सुखमय न होने का उल्लेख किया है।[२]

स्वर्गीया प्रिया की मूर्ति एव उसके दिव्य भाव रूप को कवि आजीवन विस्मृत नहीं कर सकते हैं, यह उन्होने स्वयं स्वीकार किया है।[३] मुझे विश्व का सुख श्री यदि केवल पास तुम रहो।[४] और 'बेला'[५] की एक रचना में भी इस सत्य का प्रमाण प्राप्त होता है।

निराला के जीवनकाल मे उनके एक कविता सकलन की भूमिका रूप में लिखे गए निबन्ध 'उदात्त-अनुदात्त' में डा० रामविलास शर्मा ने निराला के मृत्यु की विभीषिका से युक्त वातावरण मे साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करने का उल्लेख कर यह विचार व्यक्त किया है कि अपने भौतिक जीवन के प्रारम्भ में ही वे मातृ स्नेह से वचित हो गए थे। ''मानो उसी अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने गीतों में इष्ट देवी के रूप में बराबर अपनी दिवंगता जननी को पुकारा है। प्रकृति के सौन्दर्य का प्रतीक बनकर यदि प्रिया आती है तो मृत्युंजयी शक्ति के रूप में जिनकी अर्चना 'राम की शक्ति पूजा' में स्वयं राम ने की है उनकी स्वर्गीया

---

१ गीतिका, पृष्ठ ५
२ चाबुक, पृष्ठ ५८
३ कुल्ली भाट, पृष्ठ ६१
४. अनामिका, पृष्ठ १२०
५. बेला, पृष्ठ ७५, गीत ६७

जननी अवतरित होती हैं। इनके इस विचार से असहमति दुष्कर है कि अप्रत्यक्ष रूप से इन दो स्वर्गीया देवियों की स्मृति ने निराला को शक्ति और सौन्दर्य के अद्भुत समन्वय का कवि बना दिया।[1]

काव्य मे उदात्त तत्व के विवेचन मे लोंजाइनस ने मन की उर्जा को उदात्त की अनुभूति का प्रधान अन्तर्तत्व मानकर औदात्य को महान आत्मा की प्रति ध्वनि कहा है, और महान शब्दो का उद्गम गम्भीर और गहन विचारो से सम्भव माना है। औदात्य का जन्मजात दूसरा अवयव प्रेरणा प्रसूत आवेग भी इसी से सम्बद्ध है।[2] लोजाइनस की उदात्त के आध्यात्मिक पक्ष की चर्चा के सदृश इलाचन्द्र जोशी भी महान लेखको के व्यक्तित्व मे मूल स्रोत के आधार के लिए उसका आध्यात्मिक स्तर स्मरणीय मानते हैं।

डॉ० रामविलास शर्मा ने निराला के असाधारण व्यक्तित्व, जिसे रूप देने में उनके पारिवारिक परिवेश का बहुत बडा हाथ था, उसकी जो मूल विशेषता बताई है, उसमें काव्य के इन गुणों को हम समाहित पाते हैं। वे लिखते हैं-"वह जितने कल्पनाशील थे उतने ही मेधावी, और इन दोनों स्तरों पर उनकी कल्पना और मेधा को प्रेरित करने वाली थी उनकी अपूर्व उर्जा। कल्पना, मेधा और उर्जा उनमें सहज, जन्मजात उनके व्यक्तित्व का मूलाधार थी।[3]

निराला के पारिवारिक जीवन, एवं सामाजिक स्थिति को देखने से यह प्रारम्भ में ही स्पष्ट हो जाता है कि जीने के लिए उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने 'जीवन का चिन्ह'[4] कहा है। विकास प्रदान करने

---

१ निराला, पृष्ठ १७७
२. काव्य में उदात्त तत्व, पृष्ठ ५३-५५
३. निराला की साहित्य साधना, पृष्ठ ४७१
४. विवेकानन्द संचयन, पृष्ठ ४७१

वाले इस सघर्ष ने निराला के व्यक्तित्व का अभूतपूर्व विकास किया। कवि की प्रेरणा के पीछे उसकी सामाजिक अनुभूति और सामाजिक परिस्थिति भी रहती है।[1] यह सच है कि निराला की व्यक्तिगत सामाजिक स्थिति बगाल मे हिन्दी की सास्कृतिक स्थिति से मेल खा गई, इसका उल्लेख करते हुए डा० रामविलास शर्मा लिखते है-निराला और हिन्दी दोनो महान है दोनो उपेक्षित है, निराला को अपनी महत्ता सिद्ध करनी है हिन्दी को समृद्ध बनाकर, अपनी साधना से उसे बंगला के समकक्ष, सम्भव हो तो उससे श्रेष्ठ बनाकर। हिन्दी जातीयता की भावना निराला के जीवन में शक्तिशाली प्रेरणा बनकर आई।[2] इस प्रकार महानता के साथ हीनता की भावना की स्थिति निरन्तर हम निराला मे पाते है।

निराला के व्यक्तित्व, परिवेश एव साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमे प्राय दो भावनाये सामान्य रूप से प्राप्त होती है- एक तो यह कि भाग्य ने उनके साथ अन्याय किया है, और दूसरी इसी से सम्बद्ध भाग्य अक खडित करने की उनकी उत्कट अभिलाषा। निराला की यह युयुत्सु भावना जीवन की संघर्षमय परिस्थितियों से सीधी उत्पन्न हुई है जिसका श्रेष्ठतम निदर्शन उनकी 'राम की शक्ति पूजा' है। यहा राम के अश्रान्त और युद्ध में दुराक्रान्त रहने वाले मन के स्वयं को असमर्थ मानकर हारने और पराजय की पीड़ा, महावीर की शक्ति द्वारा पराजय के भाव का विनाश एवं नयी शक्ति के प्रादुर्भाव भाग्यवश अधर्मरत रावण को महाशक्ति का सहयोग प्राप्त होने से उत्पन्न असामर्थ्य और पुनः शक्ति पूजा में रत राम की सिद्धि के क्षण विघ्न के कारण साधना के अभाव से पूरित विरोध पाने वाले जीवन को धिक्कारने और अन्तत· अभीष्ट प्राप्ति में निराला ने अपने ही जीवन सत्य को अभिव्यक्त किया है।

---

१. आज का हिन्दी साहित्य, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृष्ठ ६८

२ निराला की साहित्य साधना, पृष्ठ ४७५

परिमल मे निराला एक ओर तो प्रकृति और सौन्दर्य की कान्ति के स्रष्टा है दूसरी ओर वह क्रान्तिकारी एव विद्रोही भी है। यह क्रान्ति भावात्मक या वैचारिक क्रान्ति ही नही है, अपितु शैलीगत, छदगत क्रान्ति भी है। 'खेवा', 'निवेदन', 'शेष', 'पतनोन्मुख', 'वृत्ति', 'प्रार्थना', 'अध्यात्मफल', 'कण', 'हमे' जाना है जग के पार', 'पारस', 'माया', 'तुम और मै' आदि चिन्तन प्रधान आध्यात्मिक एव अनुभूतिमय कविताए है। 'खेवा' मे कवि इस अपार भव-परावार मे डगमगाती हुई अपनी जीवन नौका को सभालने के लिए खेवनहार प्रभु से प्रार्थना करता है-

डोलती नाव प्रखर है धार,
सभालो जीवन खेवनहार।[1]

'अनामिका' की रचनाएँ 'परिमल' की रचनाओ की अपेक्षा कला, भाव और शैली की दृष्टि से प्रौढ है। अनामिका की 'प्रेयसी', 'प्रेम के प्रति', 'रेखा', 'प्याला', 'मरण-दृश्य', 'अपराजिता', 'प्राप्ति', 'नारायण मिले हस अन्त में' आदि रचनाए रहस्यात्मक कविताएँ है। इनमे कवि ने उस अगोचर सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा एव कुतूहल की भावनाओ की अभिव्यक्ति की है, जिसकी प्रेरणा से ग्रह-नक्षत्र, पृथ्वी आदि गतिशील हैं, तथा जो समस्त विश्व को व्यथा से व्याकुल किए हुए है।

इसी प्रकार कहीं-कहीं निराला की अद्वैतवादी विचारधारा का प्रस्फुटन भी इन कविताओं में हुआ है। जैसे प्रेयसी कविता में कवि ने बतलाया है कि मूलत· आत्मा ब्रह्मस्वरूप है लेकिन माया के पाश में आबद्ध होकर वह कलुषित हो जाती है-

---

१. परिमल, पृष्ठ ३०

बीता कुछ काल,
देह ज्वाला बढने लगी,
नन्दन निकुज की इति को ज्यो मिला मरु,
उतर कर पर्वत से निर्झरी भूमि पर
पकिल हुई, सलिल देह कलुषित हुआ।[1]

'सेवा प्रारम्भ' मे स्वामी अखण्डानन्द जी और विवेकानद जी द्वारा की गई समाज सेवा का चित्रण है। 'दान' कविता मे कवि ने उन धार्मिको पर व्यग्य किया है जो धर्म का ढोग रचते है, धर्म के नाम पर बन्दरो को पुए खिलाते है, किन्तु भूखे मानव के प्रति उनकी करूणा तनिक भी उद्वेलित नहीं होती-

मेरे पडोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली से पुए निकाल लिए,
बढते कपियो के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया दूर मानव,
बोला मैं 'धन्य, श्रेष्ठ मानव।[2]

'सतप्त', 'अनुताप', 'सच है', आदि कविताओ में कवि ने वैयक्तिक अवसाद, नैराश्य आदि का चित्रण किया है। 'ठूठ' मे कवि ने ठूठ के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की है- सम्भवत अपने सघर्षों से जर्जरित, नीरस जीवन से साथ पाकर।

'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' इस संग्रह की दो महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। 'सरोज स्मृति' एक शोकगीत है, जिसे निराला ने अपनी पुत्री सरोज की स्मृति में लिखा है। इसमें सरोज के बाल्यकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त की

---

१. अनामिका, पृष्ठ ६-७
२. अनामिका, पृष्ठ २५

कतिपय मुख्य घटनाएँ वर्णित है। कविता का केन्द्र बिन्दु दु ख और विषाद है। इस रचना मे स्नेहशील एव कोमल हृदय पिता का रूप तो सामने आता है, साथ ही निराला का विद्रोही व्यक्तित्व भी प्रस्फुटित हुआ है।

'राम की शक्ति पूजा' के माध्यम से निराला ने अपने जीवन की अनुभूति निराशा और पराजय को नाटकीय रूप दिया है। राम पर रावण की विजय बताकर कवि ने सात्विक प्रवृत्तियो की तामसिक प्रवृत्तियो पर विजय बताया है। इसमे कवि का आशावादी जीवन दर्शन स्पष्ट है।

इनके अतिरिक्त अनामिका की कतिपय कविताए विवेकानन्द एव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओ का अनुवाद मात्र है। 'गाता हूँ गीत मै तुम्हे ही सुनाने को' 'नाचे उस पर श्यामा', 'सखा के प्रति', क्रमश विवेकानन्द जी की 'गाइ गीत सुनाते तोमाय', नाचुक ताहाते श्यामा', 'सखार प्रति', का अनुवाद है। 'कहा है देश' 'ज्येष्ठे', 'तट पर', आदि कविताए रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'निरुद्देश यात्रा', 'वैशाख', 'विजयिनी', कविताओ का अनुदित स्वरूप है।

'गीतिका' के गीतो मे सगीत तथा काव्य का अपूर्व समन्वय मिलता है। निराला के इन गीतो पर पाश्चात्य सगीत का प्रभाव बगाल में विशेष रूप से पडा था, जिसे निराला ने अपने जीवन का अधिकाश वहा व्यतीत करने के कारण, सस्कार रूप में ग्रहण किया था।

'गीतिका' के 'कौन तम के पार', 'जग का देखा एक तार', 'पास ही रे हीरे की खान', 'मैं न रहूंगी जब सूना होगा जग', 'प्यार करती हूँ अलि', 'इसलिए मुझे भी करते है वे प्यार', 'तुम्ही गाती हो गान व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान', 'कौन तुम शुभ किरण वसना', 'वह रूप जाना उर में', 'कब से मैं पथ

देख रही प्रिय', 'मौन रही हार', 'कैसी बजी बीन', 'हुआ प्रात प्रियतम', 'तुम जाओगे चले', 'कितनी बार पुकारा', 'देख दिव्य छवि लोचन हारे', 'मेरे प्राणो मे आओ', 'रहा तेरा ध्यान', आदि अनेक रहस्यात्मक रचनाए है। इन कविताओ मे कवि ने अज्ञात सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है।

निराला के गीतों मे परोक्ष सत्ता की रहस्यात्मक अनुभूतियो का चित्रण भी मिलता है। उनके इस प्रकार के गीतो मे अलौकिक की अभिव्यक्ति लौकिक का आधार लेकर हुई है। निराला जी के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यावाद या आध्यात्मिकता है। उनके अधिकाश पदो में मानवीय जीवन के ही चित्रण है, किन्तु वे सब रहस्यानुभूति से अनुरजित है।[1]

इस सग्रह की कुछ कविताए भक्तिपरक है तथा कुछ मे कवि के वैयक्तिक अनुभव और मानसिक स्थिति का चित्रण है।

'अणिमा' के अधिकाश गीतो मे वैयक्तिक निराशा और अवसाद का चित्रण तथा परम सत्ता के प्रति भाव निवेदन है। गीतिका में आध्यात्मिक तथा भक्तिपरक कविताओं की प्रधानता है। भक्ति की यह धारा आगे चलकर 'अर्चना', 'आराधना' तथा 'गीतगुंज' मे प्रवाहित हुई है। 'जन जीवन के सुन्दर' 'उन चरणों में', 'दलितजन पर करो करुणा', 'भाव जो छलके पदों पर', 'धूलि में तुम मुझे भर दो', 'मैं बैठा था पथ पर', 'तुम्ही हो शक्ति' आदि गीत इसी श्रेणी के हैं। इसमे निराला का मानवतावाद छलकता दिखाई देता है। प्रभु से दलित जनों पर करुणा करने की प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है-

---

१ नन्ददुलारे बाजपेयी, गीतिका की भूमिका, पृष्ठ २५

दलित जन पर करो करुणा,
दीनता पर उतर आये,
प्रभु तुम्हारी भक्ति अरुणा।
देख वैभव न हो नत सिर,
समुद्धत मन सदा हो स्थिर।
पार कर जीवन निरन्तर,
रहे बहती भक्ति वरुणा।

'महात्मा बुद्ध के प्रति' मे कवि ने महात्मा बुद्ध की प्रशस्ति करते हुए प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक सस्कृति के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की है। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' कविता एक आख्यानक गीत है। कवि ने इसमे स्वामी परमानन्द जी और उनके आश्रम द्वारा की गई समाज सेवाओ का वर्णन किया है। उन्होने रामकृष्ण मिशन के सन्यासियो के प्रति भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

बेला की कविताओ मे विषय की दृष्टि से विविधता है। इसमें आध्यात्मिक, श्रृगारिक, प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक देशप्रेम आदि विषयो से सम्बन्धित कविताये ही मुख्य रूप से मिलती है। इस सग्रह की रहस्यात्मक कविताएँ गीतिका की परम्परा की है, परन्तु कई कविताओं मे दुरूहता तथा अस्पष्टता आ गई है। निराला ने समाज से सपृक्त रहकर ही काव्य रचना की है। उनका कवि समाज की अवहेलना नहीं कर पाया है। बेला की 'भीख मागता' कविता में एक भिखारी को देखकर विभिन्न वर्ग के लोगों मे जो भावनाएं उद्‌बुद्ध होती हैं कवि ने उनका बड़ा सजीव चित्रण किया है, साथ ही समाज की हीन मनोवृत्ति पर एक सांकेतिक प्रहार भी किया है। बेला की कुछ कविताओं पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव भी स्पष्ट है। [1]'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ' कविता में निराला मार्क्सवादियों की भाँति

---

१. बेला पृष्ठ ६२ कविता सख्या

क्रान्ति के लिए प्रोत्साहित करते है। वे पूँजी के समान वितरण के पक्षधर थे। एक गीत मे वे कहते है-

देश को मिल जाय जो,
पूजी तुम्हारी मिल मे है।[1]

इसके अतिरिक्त 'बेला' मे कुछ ऐसे श्रृगारिक गीत भी संकलित हैं जिसमे अलौकिक प्रेम की व्यजना भी हुई है इनमें सूफियाना प्रेम का पुट दृष्टिगत होता है। 'बेला की कविताओ मे भाव वैविध्य है भाव-गाभीर्य का नितान्त अभाव है। कही-कहीं भावो मे अस्पष्टता भी आ गई है। जिसका सम्बन्ध कुछ लोग कवि के मानसिक विक्षेप से भी जोडते है। कलात्मकता की दृष्टि से इन कविताओ में उत्कर्ष नही है। अस्तु इस सग्रह को भाव, भाषा एव शैली के क्षेत्र मे एक नवीन प्रयोग कह सकते है।

'नये पत्ते' निराला जी की प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी रचनाओ का सग्रह है। इस संग्रह मे सामाजिक और राजनीतिक व्यग्य प्रधान कविताओ की अधिकता है। इसमे भी उनकी अर्न्तप्रेरणा अथवा आनद की कामना के भाव अवश्य दिखाई देते है परन्तु प्रारम्भिक अथवा शेषकालीन गीतो को देखते हुए ये कृतिया इस दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण नहीं है। 'नये पत्ते' पुस्तक मे 'देवी सरस्वती'[2] ही अकेली ऐसी विशिष्ट रचना है जो निराला के आत्मोल्लास की परिचायक है। ग्रामीण जीवन को उसकी पूर्णता में अकित करने वाली यह रचना 'निराला' के व्यक्तितत्व में विद्यमान ग्रामीण जीवन से एकरस हो जाने की मूलभूत विशेषता का आख्यान भी है। 'रामकृष्ण देव के प्रति' में स्वामी रामकृष्णदेव की प्रशस्ति है। रामकृष्ण देव जी से निराला व्यक्तिगत रूप से परिचित एवं प्रभावित थे। इसके

---

१ बेला, पृष्ठ ६७
२ नए पत्ते, पृष्ठ ५८

अतिरिक्त 'कालीमाता' और 'चौथी जुलाई' के प्रति कविताएँ विवेकानन्द जी की कविताओ से अनुदित है।

अर्चना के गीत सन् १६५० मे लिखे गये थे। विषय की दृष्टि से इन सग्रहो मे भक्तिपरक गीतो की बहुलता के साथ-साथ जन जीवन और युग जीवन की तस्वीर भी मिलेगी इतना ही नही प्रकृति के गीत राष्ट्रीय भावना, जन-जागरण और लोकगीतो की भी हल्की सी अनुभूति कवि को हुई है। अर्चना को भी सामाजिकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

गीतिका के गीतो मे जैसी नवीनता और समता मिलती है वैसी ही समता अर्चना के गीतो मे उच्चारण की दृष्टि से मिलेगी। लगता है जैसे इन गीतो के स्वर ताल लय सभी ने अग्रेजी का ऋण स्वीकारा है। गीतिका के गीतो मे जो भक्ति का स्वर फूटा था वही अर्चना के बोलो मे कुछ अधिक गम्भीरता से सुनाई पडता है। अब तक की अपनी यात्रा मे थका हारा कवि विश्व भरण का आश्रय टटोलता हुआ कहता है-

'पतित को सित हाथ गहकर,
जो चलाती है सुपथ पर,
उन्हीं का तू मनन कर-कर,
पकड, निश्शर विश्व तरणी।'

परिस्थितियों से जूझता हुआ कवि जब थक जाता है तो उसकी वाणी अत्यधिक दैन्य हो उठती है। वह संसार सागर से अधिक त्रस्त हो बार-बार यह पुकार लगाता प्रतीत होता है-'भव सागर से पार करो हे', सागर से उत्तीर्ण तरी हो', 'पार करो यह सागर', 'तरणि तार दो' और 'कठिन हो ससार' ये कुछ

ऐसी पक्तिया है जिनमे दीन भक्त का स्वर है। अर्चना और आराधना मे भक्ति का जो स्वर है उसका कारण यह हो सकता है कि कवि अद्वैत दर्शन और ब्रह्म ज्ञान को सहजसवेद्य बनाने के लिए यह सब कर रहा है। अर्चना के गीतो का मूल स्वर भक्तिपरक और प्रार्थनापरक है। इन गीतो मे हल्की सी विषाद की छाया भी विद्यमान है। अर्चना के ५६वे गीत मे तो जैसे विषाद से भरा निराला का स्वर हाहाकार कर उठा है-

> चोट खाकर राह चलते,
> होश के भी होश टूटे,
> हाथ जो पार्थय थे,
> ठग ठाकुरों ने रात लूटे,
> कण्ठ रुकता जा रहा है,
> आ रहा है काल देखो।[1]

अर्चना मे उन दार्शनिक गीतो की सख्या नहीं के बराबर है, जिसमें अद्वैत दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है। हॉ, जीवन के परिप्रेक्ष्य मे कहीं-कहीं दर्शन का पुट है। अर्चना के सत्तरहवे गीत में कवि लघु तटिनी के तट पर खडा हुआ कहता है-

> "किसी विश्व मय का विकास है,
> सलिल अनिल उर्मिल विलास है।
> ....
> राग-राग से जीवन डगमग,
> सुख के उठते हैं पुलकित डग,
> रह जाती है अपल पुतलियाँ।"

आराधना, अर्चना की ही एक विकसित धारा है, भाव और भाषा भी वही है विषय और शैली में कोई नवीनता नहीं है। डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा

---

१. अर्चना गीत, पृष्ठ ५६

है-"गीतिका की भॉति इन सग्रहो मे अप्रतिम भाव विन्यास, चाहे न मिले पर इसमे भी संगीत, काव्य और सामाजिक चेतना का कुछ ऐसा विनियोग हुआ है कि इन सग्रहो के कुछ गीतो का स्थायी महत्व है।"[1] अणिमा और अर्चना की भॉति वही अवसाद आराधना और गीतगुज मे इस प्रकार आया है-

"दुखता रहता है अब जीवन,
पतझड का जैसा वन उपवन,
डालियॉ बहुत सी सूख गईं,
उनकी न पत्रता हुई नई।।"[2]

और-

भग्न तन, रुग्णमन, जीवन विषण्ण वन
क्षीण क्षण-क्षण देह, जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह, प्रलय के प्रवर्षण।[3]

इन गीतो मे कवि का वैयक्तिक विषाद ही नहीं प्रतिध्वनित हुआ है वरन् सामाजिक अवसाद या युगजीवन की खिन्नता भी है। सामाजिक अधी रुढियो से जूझने वाले कवि निराला ने कई गीतो मे विद्रोह का स्वर भी सुनाया है जिसमे शंकर का हलाहल पान करके भी कवि समाज को अमृतदान देने वाला है-

दु ख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
शकर की स्मर-शर की हाला
शशि के लाछन हो सुन्दरतर,
अभिशाप समुत्कल जीवन वर
वाणी कल्याणी अविनश्वर,
शरणों की जीवन पण माला।[4]

---

१ डा० बच्चन सिंह · क्रान्तिकारी कवि निराला, पृष्ठ १८७
२ आराधना, गीत २२
३ गीतगुज, पृष्ठ ५०
४ आराधना, गीत २

आराधना और गीत गुज दोनो मे जन मगल की कामना प्रतिध्वनित हुई है। इन सग्रहों मे कवि प्रार्थना करता है मॉ से जो दिव्य शक्ति है, आदि शक्ति है, आराधना का कवि वरदान मॉगता हुआ कहता है कवि को बडी आशा है-

मॉ मानस के सित शतदल को,
रेणु गध के पख खिला दो,
जग को मगल-मगल के पग,
पार लगा दो, प्राण मिला दो,
तरु को तरुण पत्र मर्मर दो।'

निराला सभी ओर से निराश होकर अनेक सघर्षों से जूझने के बाद भक्ति की ओर उन्मुख हुए। भक्ति की नाम-स्मरण और कीर्तन सबधी विशेषताओं से सम्बन्धित कई गीत आराधना मे मिलते है। आराधना के गीतो मे ५१, १२, १४ और १८ नम्बर के गीत इसके साक्षी है।

गीतगुज विषय और शैली की दृष्टि से वहीं प्रतिष्ठित है जहा अर्चना और आराधना। अत· स्पष्ट है कि निराला का काव्य अनेक मोडो से होता हुआ एक ऐसा शरण स्थल खोज लेता है जहॉ पर उसे सुख ही सुख मिलता है।

'निराला' के व्यक्तित्व के विश्लेषण अथवा अध्ययन के क्रम में हम देखते हैं कि निराला मे एक मिली-जुली प्रेरणा अथवा लालसा, आत्मप्रतिष्ठा के आग्रह अथवा अहमन्यता की मिलती है, जिस पर पन्त जी ने सबसे अधिक बल दिया है। समाज से क्योंकि उन्हें निरन्तर विरोध और उपेक्षा ही मिली, आर्थिक विपन्नता के कारण उचित प्रतिष्ठा भी नहीं मिल सकी, इसीलिए उनमें अहंकार के भाव की प्रधानता हम पाते हैं। सम्मान कामना से युक्त 'निराला' का यह अहं

---

१ आराधना, गीत ८

भाव उनके अन्तर्व्यक्तित्व की मूल प्रेरक शक्ति कहा जा सकता है, जिसका अनेक रूपों में प्रस्फुटन हम उनके जीवन और साहित्य में देखते हैं। 'परिमल' मे ही कवि कठ की यह आत्मविश्वापूर्ण ध्वनि हमे सुनाई देती है कि 'अभी उसका अन्त नही होगा, उसके ही अविकसित राग से दिगन्त विकसित होगा।'[1] 'अनामिका' मे कवि ने यह सूचना स्पष्ट शब्दो मे दी है कि वह कवि है और उसने 'ज्योतिस्तरणा' के चरणो पर निर्भर रहकर कुछ प्रकाश पाया है।[2] 'हिन्दी के सुमनो के प्रति' उनकी विज्ञप्ति मात्र इतनी ही है-"मै ही बसन्त का अग्रदूत, ब्राह्मण समाज मे ज्यों अछूत, मै रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।"[3] 'निराला' के इस वक्तव्य में उनके अह भाव के विविध रूप प्रतिद्वन्द्विता, विद्रोह, पौरुष और दु:ख सभी का समन्वित आभास हमे मिल जाता है। वस्तुत प्रतिभा की स्थिति परन्तु प्रतिष्ठा की अनुपस्थिति का अन्तर्विरोध निराला के व्यक्तित्व के अह और क्षुद्रता को गति प्रदान करने वाला प्रमुख तत्व है।

'काव्य साहित्य' लेख मे निराला ने काव्य को मनुष्य मन की उत्तम कृति कहकर प्रारम्भ मे ही यह स्थापना की है कि "काव्य मे यदि कोई कवि अपने व्यक्तित्व पर खास तौर से जोर देता हो तो इसे उसका अक्षम्य अहकार न समझ, मेरे विचार से, उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा। कारण, अहंकार को घटाकर मिटा देना जिस तरह पूर्ण व्याप्ति है। जैसा भक्त कवियों ने किया, उसी तरह खड़ा कर भूमा में परिणत कर देना भी पूर्ण व्याप्ति है जैसा ज्ञानियों ने किया।[4] ब्रह्म और अहं भाव की सह स्थिति अथवा समीपता

---

१. परिमल, पृष्ठ ११३-११४
२. अनामिका, पृष्ठ १२१, सरोज स्मृति
३ अनामिका, पृष्ठ ११८
४. चाबुक, पृष्ठ ४५

सम्भवत इसी दृष्टि से डा० रामरतन भटनागर ने निराला मे देखी है।[1] श्री धनन्जय वर्मा ने भी निराला के अह को भौतिक अथवा मनोविज्ञान की शब्दावली का न मानकर उसकी आध्यात्मिकता का उल्लेख किया है।[2]

बगाल मे रहते हुए जो परिचय निराला ने बगालियो की प्रान्तीयता और श्रेष्ठता की भावना का प्राप्त किया था, उसने भी निराला की अहं भावना को प्रेरणा प्रदान की। रवीन्द्र के प्रति उनके अन्दर जो प्रतिस्पर्द्धा अथवा प्रतिद्वन्द्विता का भाव मिलता है, उसके मूल मे यही भावना क्रियाशील है। प्रतिद्वन्द्विता की इस भावना का एक सूत्र निराला की उस सन्यास की अवधारणा मे भी मिलता है, जो उन्हे श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द के दर्शन ने दी थी और जिसकी अनुरूपता निराला की सामाजिक स्थिति से भी थी। तुलसी की श्रेष्ठता के प्रतिपादन और रवीन्द्र की आलोचना का मुख्य आधार यही है। रवीन्द्र के प्रति निराला की प्रतिद्वन्द्विता की भावना का यह आधार उनके व्यक्तित्व मे उपलब्ध होने वाले उस अन्तर्विरोध को जन्म देता है, जो राज-वैभव और सन्यास, श्रृंगार और वैराग्य को लेकर उनके अन्दर था। 'जीवन और साहित्य' मे हमे उनकी इस भावना का परिचय इस रूप मे मिलता है कि हम उन्हें एक ओर यदि अपने बड़प्पन की घोषणा अथवा उसकी कामना करता हुआ पाते है तो दूसरी ओर उन्हे सन्यासियो के प्रति सतत् अवनत और छोटे, साधारण तथा उपेक्षितो को देखकर "अपनपौ" खोते देखते हैं। 'देवी' कहानी मे कवि ने अपने व्यक्तित्व के इन युगल सूत्रों का विशद विवेचन स्वतः ही प्रस्तुत किया है। 'कुल्ली भाट' में भी अपना आत्म विश्लेषण करते हुए निराला ने अपने बड़प्पन के भावों की आलोचना की है,

---

१. निराला, पृष्ठ २

२ निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ ५४-५५

और अपनी क्रान्तिकारिता को मोह कहा है। सत्य से उनका यह प्रेम, कटु सत्य कहने का उनका यह साहस ही उनको महान बनाता है।[1]

निराला के अह भाव का ही एक रूप उनमे पाई जाने वाली अपने ही प्रति दया और करुणा की भावना मे मिलता है, जहा उनका व्यक्तित्व इतना विनीत और नम्र हो जाता है मानो उसका अस्तित्व ही नहीं है। वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष की चरम परिणति निराला के इस रूप मे हमें मिलती है। अपने प्रति पीडा और करुणा की भावना से इतर भी निराला के व्यक्तित्व मे दु ख अथवा अवसाद की भावना है, जो उनकी अपनी विशेषता है। दुःख की यह भावना निराला के व्यक्तित्व की सवेदनशीलता अथवा उनकी सहृदयता की परिचायक है। डॉ० जगदीश गुप्त के शब्दो में "उनका व्यक्तित्व असाधारण और अदम्य था, परन्तु उसके भीतर संवेदनशीलता मुख्य थी। अनुस्यूत करुणा का आत्मीय स्वर निराला के असाधारणत्व को सवेदना की भूमि पर ग्राह्य बनाता है।" इसीलिए गुप्त जी का यह विचार है कि "विद्रोही होते हुए भी निराला के आदर्श समन्वयवादी तुलसीदास थे, इसके मूल में निराला की शक्तिप्रियता की स्थिति है, वस्तुत विरूद्ध धर्माश्रयता उनके व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है।[2] 'राम की शक्तिपूजा', 'भक्त और भगवान' और 'कुल्ली भाट' में निराला ने राम के सेवक महावीर के भाव का जिस रूप में उल्लेख किया है, उससे दीनता और शक्ति के उन विरोधी भावों की सहस्थिति का स्पष्टीकरण होता है जिसके मूल में हमें निराला के बैसवाडी धार्मिक संस्कारों के साथ उनके विरोधी, बंगाल की धर्म साधना के तंत्रिक विश्वास भी मिलते हैं।

---

१ निराला, पृष्ठ १४८

२ धर्मयुग, १२ फरवरी, ६७, पृष्ठ १६

निष्कर्षत निराला का व्यक्तित्व उनके काव्य की मूल आन्तरिक प्रेरणा ही कहा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व की अन्तर्प्रेरणा के तीन सूत्र हमें उनकी सम्मान की कामना, अवसाद की भावना और आनन्द की कामना मे प्राप्त होते हैं, जिनका प्रस्फुटन प्रतिस्पर्द्धा, विद्रोह और आत्म-करुणा, सहृदयता, सवेदनशीलता, सघर्ष तथा आत्मोल्लास, सौन्दर्य और श्रृगार की भावनाओ के साथ ऊर्ध्वमुखी आध्यात्मिकता मे होता है।

अध्याय-चतुर्थ

पंत के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत एवं उनसे प्रभावित उनका काव्य

अध्याय-४

पंत के आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत एवं उनसे प्रभावित उनका काव्य

(अ) मार्क्सवादी एवं गाँधीवादी चिन्तन

कवि श्री पत मार्क्स एव गॉधी दोनों की विचारधाराओ से प्रभावित हुए। परन्तु उन्होने इन विचारधाराओ को उनके मूल रूप मे आत्मसात न कर उन्हें अपने जीवन दर्शन एव काव्य विचार के अनुरूप ग्रहण किया है। इन प्रभावो के विषय मे उनका कथन है-"मैं आध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शन सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूॅ। पर भारतीय दर्शन की, सामतकालीन परिस्थितियो के कारण, जो एकात परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है, दृश्यजगत एव ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उनके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं और मार्क्स के दर्शन की पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण जो वर्ग-युद्ध और रक्त-क्रान्ति में परिणत हुई है, ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।[1] मार्क्सवाद का स्वागत मुक्त-हृदय से करते हुए उन्होने गांधी से उसके समन्वय की आवश्यकता अनुभव की। समन्वय के सत्य को स्वीकार करते हुए दोनों दर्शनों का महत्व इन शब्दों में व्यक्त किया है- "हमारे सास्कृतिक हृदय के 'सत्यं शिव सुन्दरम्' का बोध सापेक्ष है, परम सत्य इस सूक्ष्म से भी परे है- यह अध्यात्म दर्शन की विचारधारा का परिणाम है। जीवन शक्ति गतिशील (डाइनेमिक) है। सामंतकालीन सूक्ष्म से अथवा विगत

---

१. शिल्प और दर्शन (पर्यालोचन)- सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ ५२

सास्कृतिक मानो और आदर्शों से मानव-समाज का सचालन भविष्य में नहीं हो सकता, उसे नवीन जीवन-मानों की आवश्यकता है, जिसके ऐतिहासिक कारण हैं, आदि- यह आधुनिक भौतिक दर्शन की विचारधारा का परिणाम है। एक जीवन के सत्य को ऊर्ध्वतल पर देखता है, दूसरा समतल पर।"[१] इस विचारधारा के साथ ही पत मार्क्स के भौतिक दर्शन को इस रूप में स्वीकार करते हैं कि स्थूल के अस्तित्व के साथ सूक्ष्म की सत्ता भी है और द्वन्द्वात्मक नियम दोनों पर लागू होगें। इन दोनों के परस्पर द्वन्द्व से नवीन सत्यों का निरूपण होता है। ऐसी उनकी मान्यता है।

आलोच्य-काल कवि के आत्म-मथन का काल था। उनका 'मन' समाज की भौतिक उन्नति के लिए लालायित था और इसके लिए वह समाधान ढूॅढ रहा था। इसीलिए मार्क्स के प्रति उसके प्रशसा-भाव जगे, परन्तु उसके अमिश्रित भौतिकवाद के दर्शन से उसे विरक्ति हुई इसीलिए वह गांधी की ओर झुके। गांधी जी को उन्होने राजनीति नहीं बल्कि संस्कृति के नेता के रूप में देखा और साथ ही, यह भी देखा कि वह राजनीति के अखाड़े का प्रयोग भी मनुष्य के आन्तरिक गुणो के विकास के लिए करते है। उनका यह दृष्टिकोण कवि को अत्यन्त उचित प्रतीत हुआ उनके प्रयोगो को देखकर विश्व के चिन्तक भी यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे थे कि गाधी जी मानवीय समस्याओं का तात्कालिक समाधान नहीं चाहते। वे तात्कालिकता से ऊपर उठ कर कुछ ऐसी बातों की खोज कर रहे थे जो मानवता को कुछ शाश्वत परिष्कार दे सके। मार्क्स ने मनुष्यों को सुधारने के लिए सत्ता की शक्ति का प्रयोग किया। गांधी जी ने मनुष्य के भीतर प्रवेश करके उसे वहीं से जागृत करने का प्रयत्न किया। मार्क्स के अनुसार मनुष्य की भौतिक आवश्यकता ही एकमात्र ध्येय थी। परन्तु गांधी जी ने आध्यात्मिक आवश्यकता ही

---

१. वहीं, पृ० ५२

एकमात्र ध्येय थी। परन्तु गाधी जी ने आध्यात्मिक आवश्यकता को भी महत्वपूर्ण बताया और कहा कि दोनो आवश्यकताओ का समाधान साथ-साथ होना चाहिए। 'मनुष्य की भीतर से जागने' वाली बात पत को श्रेष्ठ लगी और इसके लिए उन्हे राजनीति और अर्थनीति की अपेक्षा सस्कृति अधिक काम्य प्रतीत हुई- 'आज वृहत सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित' (ग्राम्या) सास्कृतिक उत्थान द्वारा समाज के परिष्कार के लिए 'लोकायतन' की महत योजना उनकी इसी विचारधारा का परिणाम है।

पत जी गाधी जी के प्रति इसलिए आग्रहशील रहे कि उनके द्वारा प्रतिष्ठित जीवन-मूल्य कवि की मानसिकता के अनुकूल है। उनकी मानसिकता क्रान्ति के उस रूप को कदापि स्वीकार नहीं करती जिसकी अन्तिम परिणति रक्तपात मे हो। वे जिस परिवर्तन की कामना करते है उसमे मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना निहित है। इसीलिए उन्होने गाधी जी की कल्याणकारी भावधारा एव मार्क्स के क्रान्तिकारी भावधारा का अपूर्व समन्वय प्रस्तुत किया। कवि के शब्दों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है- "मैने मार्क्सवाद के लोक-सगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनो का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैने दो किनारो की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एव विकसित होता है।"[1]

स्वच्छन्दतावादी वातावरण से निकलने में पन्त को गांधीजी से बड़ी प्रेरणा मिली थी। पन्त जी ने सन् १९२१ में गाधी जी का असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी जो पहला भाषण प्रयाग में सुना, उसे सुनते ही कालेज के अध्ययन को सदैव के

---

१. युगवाणी (दृष्टिपात)- सुमित्रानन्दन पत

लिए तिलाञ्जलि दे दी और राजनीति मे विशेष रूचि न होने पर भी गाधी जी से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे मन से असहयोग-आन्दोलन, ग्राम-सुधार आदि कार्यों के लिए कृतसकल्प हो गये। इन्होने गाधी जी के प्रथम साक्षात्कार का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस "भव्य आकृति को सामने उच्च मच पर बैठे हुए देखा उससे मेरे मन मे एक अज्ञात प्रकार का सतोष प्रवाहित हुआ। जैसे अपने देश के किसी चिरपरिचित सत्य को या प्राचीन कथाओ मे वर्णित उदात्त जीवन-आदर्श को ऑखे मूर्तिमान रूप मे, अपने सामने, शान्त मौन एकाग्रभाव मे प्रतिष्ठित देख रही हो। स्वच्छ खाडी से विमण्डित एक दुबली-पतली, दीर्घ, ताम्रवर्ण-तप किलष्टमूर्ति- जैसे शरद ऋतु के शुभ्र मेघो से घिरा हुआ युग-सध्या का स्वर्णशुभ्र सूर्य-बिब-वह उन समस्त दृष्टियो और हृदय की भावनाओ के लक्ष्य बन गये थे।"[1] तदनन्तर पन्त जी एक नूतन सामाजिक व्यवस्था के चिन्तन एवं मनन मे डूब गये और उनकी दृष्टि भी आदर्शोन्मुख के स्थान पर अधिकाधिक यथार्थोन्मुख हो गयी। गाधी जी की प्रेरणा से ही पन्तजी मे मानव-जीवन के प्रति नयी आस्था एव श्रद्धा जाग्रत हुई और वे गाने लगे-

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।[2]

१६३५ ई० में पन्तजी पुन· अपने भाई देवीदत्त जी के साथ गांधी जी के दर्शन करने दिल्ली गए। उस समय गांधी जी दिल्ली के हरिजन आश्रम में ठहरे हुए थे। उस काल का विवरण देते हुए सुश्री शान्ति जोशी ने लिखा है कि "दिल्ली में गांधी जी हरिजन-आश्रम में ठहरे हुए थे। पन्त तथा देवीदत्त उनके दर्शनार्थ वहाँ गये। कुशल समाचार पूछने के बाद उन्होंने दोनों को आश्रम में

---

१. शिल्प और दर्शन, पृ० ३३८
२. युगान्त-मानव।

भोजन कराने तथा उसके उपरान्त गावो मे चलने का आदेश दिया। भोजन था दो बाजरे की और एक गेहूँ की रोटी, असई की तरकारी और गुड मिली चने की दाल। इस सादे भोजन के प्रशसक होते हुये भी पत दृष्टि-भोजन ही कर पाए। मन प्रसन्न था, भूख का आभास तक नहीं हुआ। समस्त वार्तालाप में वे गाधी जी की ओर विमुग्ध अध्ययनशील भाव से देखते रहे। उनकी ऑखे इस नैकट्य का लाभ उठाकर गाधी जी को निर्निमेष देखती रहीं, मानों ऑखों द्वारा उनके अन्तरतम को पहचानने की चेष्टा करती हों। इस बार की भेंट में पन्त के उन्मुक्त मनोजगत में गांधी जी का जो प्रभाव पडा उसकी चर्चा उन्होंने विशेषत. अपनी 'आत्मिका' नामक सस्मरणात्मक रचना तथा 'गांधी जी के संस्मरण' नामक निबन्ध में की है। अपने इस अन्त.दर्शन का उल्लेख न केवल उन्होंने अपनी वार्ताओं, निबन्धों में बार-बार किया है, वरन् सन् ३५ के बाद का समस्त काव्य विशेषकर 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', तथा सर्वोपरि 'लोकायतन', इस प्रभाव की स्वीकारोक्ति हैं। गाधी जी के व्यक्तित्व एव उनके विचारों ने पन्त को अत्यधिक प्रभावित किया था। इसी कारण पन्त ने 'वायु के प्रति' कविता में लिखा है-

नव सस्कृति के दूत। देवताओं का करने कार्य,
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवार्य।[1]

इन्होंने गांधी जी की सत्य एवं अहिंसा सम्बन्धी विचारधारा का पूर्ण समर्थन किया और उनके अमर प्रेम की भूरि-भूरि प्रशसा की-

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन।
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जग जीवन।
आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता।
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त हो जावेगी पाशवता।[2]

---

१. रश्मि बंध, पृ० ७४

२. रश्मि बंध, पृ० ७४

इतना ही नहीं, गांधी जी के सत्य एवं अहिसावादी विचारों को तो पन्तजी ने अटूट एवं सुदृढ सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया और कहा-

नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय,
पर, मनुष्य को सत्य अहिसा इष्ट रहेगे निश्चय।[1]

गांधी जी ऐसी नई संस्कृति का प्रचार एव प्रसार कर रहे थे, जिसमे ऊॅच-नीच, छुआछूत, जाति-पांति आदि की भावनाओ का परित्याग करके मानव सभी व्यक्तियों को गले लगायेगा, सम्पूर्ण मानवता के विकास के लिए प्रयत्न करेगा और तन-मन, जीवन में व्याप्त भेदभावों को छोडकर वाणी, भाव, कर्म आदि से सुसस्कृत होकर एक नई संस्कृति का अनुयायी होकर इसी धरा पर स्वर्ग की स्थापना करेगा। पन्त जी भी गांधी जी के इन विचारों से पूर्णतया प्रभावित हुए और उन्होंने भी 'नव सस्कृति' कविता में लिखा-

ज्ञानवृद्ध, निष्क्रिय न जहॉ मानव मन,
मृत आदर्श न बन्धन, सक्रिय जीवन।
रूढ़ि रीतियॉ जहॉ न हों आरोधित,
श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित।[2]

इतना ही नहीं,

मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन में रति,
भव मानवता में जन जीवन परिणति।
संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,
सुन्दर हों जन वास, वसन सुन्दर तन।
- ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित
नव मानव सस्कृति किरणों से ज्योतित।[3]

---

१ रश्मि बंध, पृ० ७५
२ रश्मि बंध, पृ० ७५
३. रश्मि बंध, पृ० ७५

यह नव सस्कृति एव सामाजिक परिवर्तन तभी आ सकते थे, जब कि प्राचीन रूढियों का विनाश हो, पुरानी परम्परायें टूटें और नवीन विचारों को जन अपनाये। इसी कारण पन्त ने लिखा-

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र।
हे ग्रस्त ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण।
हिम ताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वीतराग, जड, पुराचीन।[1]

इतना ही नहीं कवि ने उस कोकिल का आस्वान किया, जो कवि के स्वर से स्वर मिलाकर ऐसा गान गाये, जिसमे जीर्ण पुरातन को नष्ट भ्रष्ट करने की शक्ति हो और जो जन हृदय को सुन्दरतर भविष्य की ओर ले जाने में समर्थ हों। इसी कारण पन्त ने नवयुग की सन्देशवाहिका कोकिल को सम्बोधन करते हुए कहा-

गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वस-भ्रश जग के जड बन्धन
पावक पग धर आते नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन।[2]

इस प्रकार गाधी जी के विचारों से प्रभावित पन्त जी का हृदय क्रान्तिकारी हो जाता है, वह नूतन विकास की कामना करने लगता है, जीर्ण-शीर्ण पुरातन को नष्ट करने का इच्छुक हो जाता है, जड बन्धनों को तोड डालना चाहता है, नयी प्रगति का अभिलाषी हो जाता है और नवीन सृष्टि का निर्माण करना चाहता है, कहता है-

सुन्दरता का आलोक स्रोत,
है फूट पड़ा मेरे मन में,
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आंगन में।[3]

---

१ रश्मि बंध, पृ० ७१
२. पल्लविनी, पृ० २२४
३. युगवाणी, पृ० २२

गाधी जी से प्रभावित होने के कारण पन्त जी ने तत्कालीन दमन और अन्याय से मानव की मुक्ति के लिए सक्रिय सघर्ष को महत्व नहीं दिया, अपितु उदारतमवादी भारतीय बुद्धिजीवियों के दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए गाधीवादी चिन्तनधारा के मूलभूत सिद्धान्तों को ही महत्व दिया, परन्तु सत्य और अहिसा का समर्थन करते हुये भी साम्राज्यवादी दमन एव शोषण की स्पष्ट आलोचना की-

साम्राज्यवाद था, कस वन्दिनी मानवता पशुबलाक्रान्त
श्रृंङ्खला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद-शक्ति भ्रान्त
कारागृह मे दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त कान्त।[1]

गांधी जी से प्रेरित होकर ही पन्त जी ग्राम्य जीवन की ओर उन्मुख हुए और वहॉ व्याप्त निर्धनता, निरीहता, निर्वसनता गन्दगी आदि का निरीक्षण किया और इसीलिए पासी के दो लडको पर एक कविता लिखी-

मेरे आंगन मे, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लडके आ जाते हैं अकसर
नगे तन, गदबदे, सॉवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले-पर फुर्तीले।[2]

इन देहाती लडको के जीवन को देखकर पन्त का कवि आकुल व्याकुल हुआ और उसने यह कल्पना की-

क्यों न एक हो मानव मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर?
जीवन का प्रसाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने,- मानव-हित निश्चय।[3]

---

१. बापू के प्रति- पल्लविनी, पृ० २६१
२. रश्मि बंध, पृ० ७६
३. रश्मि बंध, पृ० ७६

गाधी जी की प्रेरणा से ही पतजी ने ग्राम्य जीवन पर कई कवितायें लिखीं, जिनमे वहा के अभावग्रस्त एव अभिशापित जीवन की मर्मस्पर्शी झॉकी प्रस्तुत की-

यहॉ खर्व नर (वानर) रहते, युग-युग से अभिशापित,
अन्न वस्त्र पीडित, असभ्य, निर्बुद्धि, पक मे पालित।
यह तो मानव लोक नहीं है, यह रे नरक अपरिचित,
यह तो भारत का ग्राम, सभ्यता सस्कृति से निर्वासित।[1]

गांधी जी के जीवन-दर्शन से पतजी इतने प्रभावित रहे है कि उनके 'लोकायतन' का पूर्वार्द्ध गाधीवाद से ही प्रभावित है। वहॉ कला-शिविर मे राष्ट्र-वन्दना होती है, यहॉ देश की गरिमा, समृद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण के साथ-साथ उन आदर्शों एव कल्पनाओ को भी उभारा गया है जिन्हे कवि भारतीय जीवन मे चरितार्थ होते हुए देखना चाहता है। यहॉ कवि ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति भी अपने उद्गार व्यक्त किए है, जिसे गाधी जी भी राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए प्रेरणा देते थे और उस शिविर का सम्पूर्ण कार्य हिन्दी मे होता है। यहॉ १८५७ से १६४७ तक की सम्पूर्ण राजनीतिक घटनाओ का विवरण प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय भाव व्यक्त हुए हैं और गाधी जी को एक महान जननायक मानकर उनका स्तवन इस तरह किया गया है-

जय राष्ट्रपिता, जय मानव, जय शुभ्रपुरूष, युग सभव।
जय आत्मशक्ति के पर्वत, भू-स्वर्ण-दूत, युग नर नव।
तुम छू जन जीवन के बहु जर्जर पक्षाहत अवयव
भू संस्कृति को, युग मन को दे गये ऊर्ध्व नव गौरव।[2]

इस प्रकार गांधीवाद से प्रभावित चितन-धारा का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पन्त जी गांधी जी की तरह एक विराट सत्ता में विश्वास करते

---

१. ग्राम्य चित्र- ग्राम्या, पृ. १६
२. लोकायतन, पृ. १३६

हैं, सम्पूर्ण मानव कल्याण मे ही अपना कल्याण समझते है और सम्पूर्ण समाज की मुक्ति मे ही अपनी मुक्ति मानते है, समाज के सभी बन्धनो को तोडकर एक मानवता के पक्षपाती है, जहॉ सभी जीव समान है, कोई छोटा-बड़ा, ऊॅचा-नीचा, छूत-अछूत नहीं है, सभी एक ही ईश्वर के बनाये हुये है, वे प्रार्थना, नमाज आदि मे कोई अन्तर नहीं समझते तथा ईश्वर के प्रति गहन श्रद्धा एव आस्था वयक्त करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। वे प्राचीनता से ग्रस्त रूढियों एवं परम्पराओ का विनाश करके नवीन विचारधारा के पोषक है, तथा नई सभ्यता एव नई संस्कृति के द्वारा मानवो मे नई चेतना एव नई स्फूर्ति जागृत करना चाहते है। इसी कारण पन्त जी ने गाधी जी से प्रभावित होकर सत्य-अहिंसा पर आधारित नई उदारवादी क्राति को ही नवीनता लाने मे समर्थ माना है और उग्रवादी विचारधारा का विरोध किया है, नारी शिक्षा एव नारी स्वातत्र्य पर बल दिया है तथा एक ऐसी नई सास्कृतिक क्राति लाने की चर्चा की है जो सम्प्रदायो धर्मों एव मत-मतान्तरो की दीवारो को तोडकर मानव-समाज के विकास में सहायक हो, लोक इसी धरती पर स्वर्गीय जीवन प्राप्त कर सकें और भारतीय जीवन दारिद्य एवं अज्ञान से मुक्त होकर नये उत्साह, नई स्फूर्ति, नई शक्ति एवं नये साहस के साथ सृजन-पथ पर अग्रसर हों।

पन्त जी की चिन्तनधारा केवल गाधीवाद तक ही सीमित न रही। यद्यपि वे गांधी जी के प्रति गहन आस्था एवं आदर-भाव रखते थे, तथापि वे मार्क्सवादी चिंतन-धारा की ओर भी उन्मुख हुए और उन्होंने लिखा कि "कालाकांकर आकर मैंने फिर से मार्क्सवाद सम्बन्धी आधुनिक विचारधारा का अध्ययन-मनन करना आरम्भ कर दिया और मैं अपने अध्ययन तथा नये यथार्थ-बोध की दृष्टि से

अपने चतुर्दिक फैले ग्राम-जीवन को देखने और उस पर विचार करने का प्रयत्न करने लगा। मैने अनेक ग्रामीणो से मिलकर उनकी मन·स्थिति तथा विचारो का भी परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की। मेरी नवीन विचारधारा सम्बन्धी कविता का नवयुवको ने तो स्वागत किया, किन्तु वयोवृद्ध तथा समवयस्क साहित्यिकों ने उसके प्रति उपेक्षा ही प्रकट की . .... पर इस लोकोत्थान के युग मे मार्क्सवादी विचारों का महत्व तथा उनकी सच्चाई मेरे मन मे अकित हो चुकी थी। गाधीवाद का सास्कृतिक नैतिक पक्ष, व्यक्तिवादी साधना का दर्शन होने के कारण वर्तमान देश-काल की स्थिति मे आकर्षक तथा प्रीतिकर होने पर भी, आर्थिक-सामाजिक पक्ष मुझे मार्क्सवाद का ही अधिक उपयोगी तथा लोकमगलकर लगा।''[1] इतना ही नहीं, पन्त जी को यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि केवल मार्क्सवाद या साम्यवाद ही इस पृथ्वी पर नवीन युग की सृष्टि कर सकता है। पन्त जी ने यह घोषणा की कि मार्क्सवादी चिन्तनधारा के फैलते ही एक नई विश्व-सभ्यता स्थापित होगी, मानव की निर्धनता और उनका दुर्भाग्य समाप्त हो जायेगे, धनियो एवं पूँजीपतियों की आकांक्षायें एव उनके कठोर व्यवहार तिरोहित हो जायेगे, अंधविश्वास विलीन हो जायेगा, रूढिगत नैतिक सिद्धान्तों की कमर टूट जायेगी और मार्क्सवाद के द्वारा एक नई सस्कृति का उदय होगा-

साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुंदुभि से घोषित,
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।
विकसित हो, बदले जब तक जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता संपादन।
सामाजिक सम्बन्ध बने नव, अर्थभित्ति पर नूतन,
नव विचार, नव रीति-नीति, नव नियम, भाव, नव दर्शन।[2]

---

१. भेंट वार्ता- १९-९-६८
२. मार्क्स के प्रति- युगवाणी।

मार्क्सवादी विचारो का विश्लेषण करते हुए वर्गहीन समाज की स्थापना, श्रमिको के शासन का श्री गणेश, यन्त्रो द्वारा उत्पादन कार्य का शुभारम्भ आदि का पन्त जी ने निरूपण करते हुए पूँजीपतियो की भर्त्सना की जो जोक की तरह श्रमिको का खून चूसते रहते है, दूसरो के श्रम बल पर ही ऐशो आराम करते है, जो दर्पी, हठी, निरकुश, निर्मम, कलुषित एव कुत्सित है और जो निरन्तर जगती का शोषण करते रहते है-

वे नृशस है, वे जन के श्रम बल से पोषित,
दुहरे धनी, जौक जग के, भू जिनसे शोषित।
नहीं जिन्हे करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अत अपरिचित।
दर्पी, हठी, निरकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत सस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत।[1]

पन्त जी पूँजीपतियो की भर्त्सना करते हुए भारत के किसान की प्रशंसा करते है, और उसकी दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए भी उसे भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने वाला तथा नूतन परिवर्तन लाने वाला सिद्ध करते है-

विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत, गृह द्वार, वही वृष हँसिया औ हल।
वह संकीर्ण, समूह कृपण, स्वाश्रित पर पीड़ित,
अति निजस्व प्रिय, शोषित, लुण्ठित, दलित, क्षुधार्दित।[2]

श्रमिकों को पन्त जी 'लोक क्रान्ति का अग्रदूत' कहते हैं जिनमें असाधारण सहनशीलता, नैतिक श्रेष्ठता, संघर्ष करने की दृढ़ता त्याग एवं निःस्वार्थता है तथा

---

१. युगवाणी
२. युगवाणी

निर्भीकता एव श्रमशीलता के साथ ही अटूट पौरुष एव अदम्य साहस है। उसी के लिए कवि कहता है-

> लोक क्राति का अग्रदूत, वर वीर जनादृत
> नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक शासित।
> चिर पवित्र वह भय, अन्याय, घृणा से पालित,
> जीवन का शिल्पी पावन श्रम से प्रक्षालित।[1]

इस प्रकार पन्त जी ने मार्क्सवाद को आर्थिक विकास का साधन मानकर उसके प्रति गहन विश्वास व्यक्त किया और कहा कि "देश के जीवन दर्शन से बाहर मेरा ध्यान सर्वाधिक तब जिन वस्तुओ की ओर आकृष्ट हुआ था, वे थे मार्क्सवाद तथा रूसी क्रान्ति।[2] नि सदेह मार्क्सवाद ने मानव-समाज के जीवन के भौतिक पहलू पर विचार करते हुए अर्थव्यवस्था की सम्यक् व्याख्या तो की, किन्तु व्यक्ति की आध्यात्मिक मॉगो पर उचित ध्यान नहीं दिया, क्योकि वह आध्यात्मिक मूल्यो को स्वीकार नहीं करता।

पन्त जी के अनुसार मार्क्सवादी व्यवस्था मे व्यक्ति सामाजिकता का शिकार हो जाता है। इसके विपरीत गत-युगो में सामाजिकता वैयक्तिकता की शिकार रही थी। अत· दोनो में सामंजस्य आवश्यक है। व्यक्ति ही समाज को बदलता है, बूँद में ही समुद्र की सत्ता है, व्यक्ति ही सृजन शक्ति का दूत है, उसको मशीन बना देने वाला साम्यवाद निन्दनीय है। क्योंकि साम्यवादी अभाववादी हैं वे सामाजिक समता का कटु विष जनता की रग-रग में घोल रहे

---

१. युगवाणी
२. चिदम्बरा, पृष्ठ १५

है। अत. सृजन नही हो रहा है।[1] मनुष्य के अर्न्तमन मे स्थिर अन्तर्चेतना (Intuition) मनुष्य को अमरता की ओर ले जाना चाहती है, परन्तु मार्क्सवाद उस ओर जाने से ही इनकार करता है। यही जडता है, साम्यवादी व्यवस्था द्वारा स्थापित समता 'अहमन्य जड समता' है। गॉधी जी इस जड समतावाद के विरोधी थे, क्योंकि वे आत्मवादी थे। वे भू से स्वर्ग क्षितिज पर ऊर्ध्व चरण रखते थे, अहिसा के तीरो से भू-तमस को पराजित करने आए थे। सस्कृति के शास्त्र को उन्होने सफलतापूर्वक राजनीति के क्षेत्र मे प्रयुक्त किया था।[2] युगान्त मे 'बापू' शीर्षक कविता मे कवि की मार्क्सवादी और आध्यात्मवादी धारणाओ पर अच्छा प्रकाश पडता है। गॉधी जी के कृतित्व का वैज्ञानिक मूल्याकन भारतीय साम्यवादी दल नही कर सका। पन्त जी ने गाधी जी के क्रान्तिकारी पक्ष पर इस कविता में अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होने गाधी जी के अछूतोद्धार, राजनैतिक जागरण, अहिसात्मक अस्त्र, सहयोग शिक्षा आदि की प्रशंसा की है। गॉधी जी के सामाजिक, राजनैतिक दोनो क्षेत्रो मे कृतित्व को स्वीकार कर पन्त जी उनकी आध्यात्मिक भावना की भी प्रशसा करते हैं, इसलिए नहीं कि उनके माध्यम से देश में राजनैतिक क्रान्ति हुई, इसलिए कि उनकी आध्यात्मिकता प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा की ही एक किरण थी, जिसने भौतिकवाद पर विजय प्राप्त की, इतिहास को बदल दिया। साम्यवाद के भौतिकतावादी, जड़वादी स्वरूप के लिए गाँधीजी का दर्शन एक चुनौती थी-

---

१. आज अभाव शक्तियाँ जग में, काँटे बोती हैं पग-पग में।
सामाजिक समता का कटु विष, दौड़ रहा जग की रग-रग में।।
आज भाव की सृजन शक्तियाँ, उतर नहीं पाती हैं भू पर।

२ नोआखाली के महात्मा जी के प्रति-स्वर्ण किरण।

"था व्याप्त दिशावधि ध्वान्त, भ्रान्त
इतिहास विश्व उद्भव प्रमाण।
बहु हेतु, बुद्धि जड़ वस्तुवाद,
मानव सस्कृति के बने प्राण।।
थे राष्ट्र, अर्थ, जन साम्यवाद,
छल सभ्य जगत के शिष्ट मान।
भू पर रहते थे मनुज नहीं,
बहु रूढि, रीति, प्रेतो समान।।'
तुम विश्व मच पर हुए उदित,
बन जग जीवन के सूत्रधार।
आत्मा को विषयाधार वना,
दिशि पल के दृश्यो को सॅवार।
गा-गा एकोह बहु स्याम,
हर लिए भेद, भव-भीति-भार।।"

पन्त जी सामान्य मानवता के प्रचारक है और आध्यात्मिक सत्य के प्रति सदा जागरूक है, इसीलिए एकात्मक ज्ञान के अभाव में सारी विश्व सस्कृति शून्य लगती है-

लगती विश्री और विकृत आज मानव कृति,
एकत्व शून्य है, विश्व मानवी सस्कृति।

कवि पन्त ऐतिहासिक दृष्टि से जब समाज के विकास पर विचार करते हैं तो 'ग्राम्या' में वह रक्त क्रान्ति का भी समर्थन करते हैं, व्यक्ति व वर्ग पर गत युग की संस्कृतियाँ आधारित थीं, वह यह मानते हैं। वह यह भी मानते हैं कि व्यक्तिवादी मान्यताएँ यन्त्र युग में अनुपयोगी हो गई हैं। परन्तु साथ ही वह गाँधी जी को आत्मवादी दर्शन की परम्परा का प्रतीक मानते हैं और साम्यवादी युग मे भी अध्यात्म शक्तियों में विश्वास को आवश्यक मानते हैं अन्यथा यान्त्रिकता की वृद्धि होगी। मार्क्सवाद से भौतिक वर्ग, वर्ण और जाति के नाश का पक्ष ग्रहणीय है और गाँधीवाद से आत्मा व परमात्मा में विश्वास का। पन्त के अनुसार

---

१ युगान्त, पृष्ठ ६८

मार्क्सवाद रोजी-रोटी की समस्या को ही हल करने का साधन मात्र है इसलिए आन्तरिक मन के सगठन के लिए 'गॉधीवाद' को स्वीकार कर लेना कल्याणकर होगा जिससे क्रान्ति के आन्तरिक पक्ष (मन की क्रान्ति) को बल मिलेगा और क्रान्ति, विकास, सुधार, जागरण के प्रयत्नों से एक नवीन सस्कृति का जन्म होगा जिससे मैटर, जीवन और मन में परिवर्तन हो जायेगा और ऊर्ध्व चेतना की ओर विश्व उन्मुख हो जायेगा, तब विविधता, वर्ग द्वन्द्व, वर्ण, जाति, देश आदि के अनेक कटघरों मे विभाजित जनता पूर्ण एकता का अनुभव करेगी और ये सारे द्वन्द्व स्वयमेव नष्ट हो जायेगे, और जब आध्यात्मवाद व भौतिकवाद का समन्वय हो जायेगा अर्थात् भौतिक दृष्टि से उत्पादन व वितरण की समस्याओं का हल हो जायेगा, अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियो के द्वारा जब प्रकृति को मानव के लिए अधिकाधिक उपयोगी बना लिया जायेगा, जब आध्यात्मिक शक्तियों की खोज को भी जीवन का ध्येय मान लिया जायेगा और उसके लिए वस्तुत व्यक्ति प्रयत्न करेगा तो वह युग पन्त जी के शब्दों मे 'अन्तर्चेतना' या 'नवमानववाद' का युग होगा। पन्त जी कहते हैं कि आज एक व्यापक सास्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता है जो चेतना के सम्पूर्ण धरातलों में समन्वय स्थापित कर सके, भौतिकवाद व आध्यात्मवाद दोनों में संतुलन खोज सके। इस आन्दोलन का पूर्वाभास पन्त जी को गॉधी जी के व्यक्तित्व में मिलता है।

(आ) महर्षि अरविन्द

कवि पत की वीणा-पल्लव' काल की रचनाओं में कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, तथा युगान्त और उसके बाद की रचनाओं पर गाँधी जी के दर्शन का प्रभाव झलकता है। 'ग्राम्या' की रचना के पश्चात् कवि सात लम्बे वर्षों तक अपनी बीमारी के कारण मौन रहा। इस बीच में कोई रचना हमारे सामने नहीं आती है, पर यह मानना होगा कि

इस समय मे भी उनके हृदय मे मथन चलता रहा। कुछ स्वस्थ होने पर वे पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम मे चले गये जिसके फलस्वरूप उनके दार्शनिक चिंतन में विशेष परिवर्तन हुआ। प्राय पूर्व और पाश्चात्य का कोई भी दर्शन उनके हृदय के द्वन्द्व को शान्त नहीं कर सका तथा प्रत्येक दर्शन में उन्हें कोई न कोई अभाव खटकता ही रहा। पर अरविन्द दर्शन को पाकर कवि को बहुत सन्तोष मिला और उनके अभाव की पूर्ति भी हो गई। अतः सन् १६४७ के उपरान्त की रचनाओं में श्री अरविन्द जी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। चेतना के जिस विकास का धुंधला स्वप्न और पृथ्वी पर स्वर्ग लाने की जो कल्पना पंत जी कर रहे थे, वह अरविन्द के दर्शन के अध्ययन के पश्चात् पूरी होती है।

पत जी ने अपनी रचनाओं में मुक्त हृदय से अरविन्द दर्शन का अनुवाद किया। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' और 'युगान्तर' की कई रचनाओं में अरविन्द के प्रति अपनी भक्ति भावना को प्रदर्शित किया है। पत जी ने श्री अरविन्द को 'योगेश्वर', चेतना का दिव्य उत्पल', 'अतिमानव', 'मानव ईश्वर', 'कवि ऋषि' और दिव्य जीवन के दूत आदि कहा है। 'उत्तरा' की भूमिका में उन्होंने अरविन्द के प्रभाव को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं- 'श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएँ, भेंट रूप में 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', तथा 'युगपथ' में पाठकों को मिलेगी। श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतल स्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य, नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा देखने को नहीं मिला। विश्वकल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के

वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत विज्ञान का बडे से बडा दान भी जीवनमृत मानव जाति के भविष्य के लिये आत्म पराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता।'' 'युगान्तर', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', तथा 'उत्तरा' मे कवि ने अरविन्द के प्रति अपनी श्रद्धा भावना को व्यक्त किया है। यथा-

''श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम।
विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकर्म प्रणाम।'' -(स्वर्ण धूलि)

तथा 'उत्तरा' में भी 'मानव ईश्वर' शीर्षक मे कवि ने इसी प्रकार अरविन्द को सम्बोधित करके कहा है-

''नव जीवन शोभा के ईश्वर,
अमर प्रीति के तुम वर,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल से,
खिलते उर में सुन्दर।
शान्त अभय हो जाता अन्तर,
ध्यान तुम्हारा स्नेह मौनधर,
श्रद्धा पावन हो उठता, मन
हर्ष प्रणत चरणों पर।।''

इस प्रकार पत जी की उत्तरकालीन रचनाओं में जो नवीन दार्शनिकता एवं नवीन आदर्श के दर्शन होते हैं, उसका कारण योगिराज अरविन्द का प्रभाव ही है। जब से पंत जी उनके सम्पर्क में आये उनकी भावधारा में ही परिवर्तन हो गया जो अभी तक कवि को जीवन और जगत की समस्याओं को सुलझाने में

एक अभाव खटकता था वह भी पूरा हो गया। उन्होने भौतिकवाद से अध्यात्मवाद का समन्वय स्थापित करके जगत की गुत्थियो को सुलझाने का प्रयास किया।

"हिमाद्रि और समुद्र" शीर्षक कविता मे कवि पत चेतना के स्तरो का वर्णन अरविन्द की पद्धति के अनुसार करते है, सुपर माइण्ड (चित्त) को ही साधना का लक्ष्य बताते है-

"वह शिखर शिखर पर स्वर्गोन्नत,
स्तर पर स्तर ज्यों अन्तर्विकास।"

ब्रह्म एक चेतना के असीम सागर के समान है जिसमे उद्वेलन से सुख-दुःख की लहरें उत्पन्न होती हैं, नाम रूपमय जगत का सृजन व विनाश होता रहता है, जड़ व चेतन दोनों इसी चेतना सागर मे समाहित होते रहते हैं, लहर का रूपात्मक व्यक्तित्व चेतन सागर का ही अश है। अत चेतना सागर ही प्रधान है न कि पदार्थ या मैटर।

वह जो अनन्त जीवन वारिधि,
अहरह अशान्त औ उद्वेलित।
जिसके निस्तल गहरे रग मे,
अगणित भव के युग अन्तर्हित।।
जग की अबाध आकाक्षा से,
इसका अन्तस्तल आन्दोलित।
सुख-दु ख आशा आकाक्षा के,
उत्थान पतन से चिर मन्थित।।"

सृष्टि विकास का वर्णन पंत जी अरविन्द के अनुसार करते हैं। ब्रह्म की चिद् शक्ति से ही शून्य ध्वनि या आकाशतत्व की उत्पत्ति होती है और आकाश से पवन अग्नि, जल और पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति होती है। एक ही चेतना भौतिक तत्वों के रूपों में बदल जाती है और साथ ही साथ इस भौतिक जगत पर शासन भी करती है-

''नभ से बन पवन, पवन से जल,
लालायित यह चेतना अमर।
सोई धरती से लिपट,
जगाने उसे युगो की जडता हर।''

इस प्रकार ब्रह्म, आत्मा व जगत एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न स्वरूप है। जीव, जगत और ब्रह्म मे ही अवस्थित है जैसे लहरें सागर मे। चेतना अपने एक अंश को, भौतिक जगत के बन्धन मे रखकर, उसमे मुक्ति की प्रेरणा भरती है। इसीलिए जीव का यह स्वभाव है कि वह भौतिक बन्धनों से स्वतन्त्र होना चाहता है। यही ब्रह्म की लीला है।

''भू के गहरे अन्धकार मे,
वही जीव अनिमेष नयन।
देख रहा नभ ओर ज्योति के लिए,
जहॉ रवि, शशि उडूगण।।''

मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण है। मन मे वह शक्ति निहित है जो ऊर्ध्व चेतन की ओर हमें उन्मुख करती है। इस शक्ति के उदित हो जाने पर मन जगत के आनन्दो में सन्तोष नहीं पाता, उसमें शाश्वत प्यास जग जाती है और वह अन्तर्ज्योति से ज्वलित हो जाता है। यह जगत अशुद्ध बुद्धि से देखने पर दुःखात्मक लगता है तटस्थ होकर देखने से इसमें मूल सत्ता की आनन्दात्मक अभिव्यक्ति ही प्रतीत होती है-

''धूप छाँह यह जग, आशा में धुली निराशा।
राग द्वेष, सुख, दु ख सँग बँधी अमिट अभिलाषा।
पाप पुण्य औ मिथ्या सत्य जगत में गुंथित।
ज्योति तमस द्वन्द्वों से निश्चय संसृति निर्मित।।
जगत जीवन के कुछ अभ्यास, बन गए अब डर के विश्वास।
सद्-असद् सदाचार व्यवहार, लिपट प्राणों से गए उदास।।''

जड व चेतन को एक ही सत्ता की अभिव्यक्ति मान लेने पर सुख-दु ख, वर्ग, जाति, स्पर्धा, सघर्ष आदि की समस्याये स्वत शान्त हो जाती है-

> वही ब्रह्म तिरोहित जड मे जो चेतन मे विकसित।
> वही फूल, मधु, सुरभि वही मधुलिह चिर गुन्जित।
> वस्तुभेद ये चिर अमूर्त ही भव मे मूर्तित।
> वह अज्ञेय, स्वत सञ्चालित, एक अखण्डित।

परन्तु वह जगत मे व्याप्त होकर भी उससे परे है-

> एक एकता से न बद्ध बहु मुख शिख शोभन।
> सर्व, सर्व से परे, अनिर्वचनीय, वह परम। -
> (स्वर्ण किरण पृष्ठ १३६)

पन्त जी भौतिकवाद की एकाड्गिता से पीडित थे। अत· अरविन्द दर्शन के सूक्ष्म विवरणों को न देकर कवि पन्त उसके उन तत्वो का ही अधिक प्रचार करते हैं जिनसे सामजस्य सम्भव है। पत ने मन और ऊर्ध्व चेतना की पुनरावृत्ति करके समन्वय के लिए प्रेरित किया है-

> "ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
> वे प्रकाश की है सन्तान।
> ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
> करना उन्हे आत्म निर्माण।"
> (स्वर्ण धूलि-पृ० ३०)

पत जी ने 'लोकायतन' मे अरविन्द प्रतिपादित मानव चेतना के विकास सिद्धान्त में विश्वास व्यक्त किया है। अन्नप्राण और मन के स्तर तक विकसित मानव चेतना अपने भीतर ईश्वरत्व की सम्भावना छिपाए हुए है। दिव्य जीवन अथवा भागवत् जीवन की उपलब्धि के लिए न तो शून्य में भटकने की आवश्यकता है और न शरीर को तपाने की। अन्तरवृत्तियों को तद्गत करने के लिए योग के आकाश में भटकना व्यर्थ है। प्राण चेतना के स्तर पर जीवन को

परिपूर्ण स्वीकृति प्रदान करने से दिव्यात्मा का सौन्दर्य प्रेम तथा आनन्द का स्रोत बनकर जड़-चेतन की शिराओ मे वाहित होता है। दिव्य चेतना को प्रकृति एव जीवमात्र में अनुभव करते हुए जिस एकत्व का बोध होता है वही लोकसाम्य की सुदृढ नींव बन सकने में समर्थ है-

"वह शून्य न सूक्ष्मीकरण न तद्गत अन्तर
प्राणों से स्पन्दित वह चिद् जीवन भास्वर
सौन्दर्य प्रेम आनन्द सृजन रस निर्झर।"
(लोकायतन, पृ० २२०)

भगवत शोभा की आनन्द ज्योति को मानव प्रकृति में समाहित कर देना ही ईश्वरीय आशय का पालन करना है। वशी ने व्यक्तिमुक्ति अथवा आत्मयोग को प्रश्रय न देकर जीवन के सामूहिक विकास का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। पन्त जी ने अरविन्दीय अध्यात्म को आशिक रूप में ही स्वीकार किया है। पन्त जी मूलत सामाजिक सौन्दर्य के प्रतिपादक है जबकि अरविन्द दिव्यात्मा के सौन्दर्य के। 'उत्तर स्वप्न' में पन्त जी का मानवतावादी अध्यात्म दर्शन अतुल के मुख से अभिव्यक्ति पाता है-

"आत्मा के स्तर पर प्रभु दर्शन
दुष्कर हों कृत्रिम भी निश्चय
जीवन दर्पण में ईश्वर मुख
देखना सुलभ जो विधि आशय
जन भू मन में उन्नत शाश्वत
मूल्यों का वैभव हो संचय
भगवत् शोभा आनन्द ज्योति
उतरे भू पर-प्रभु जगदाश्रय।"
(लोकायतन, पृ० ६६२)

पन्त जी आत्मा को ऊर्ध्व लोक मे उठाने की कृच्छ योगसाधना के हिमायती नहीं हैं। उनका विश्वास है कि उच्च मानवीय मूल्यों को समदिक् सचरण में उतारने पर शाश्वत शोभा का स्वर्ग इसी धरती पर सम्भव है और उस स्वर्ग में अभेद-मूलक सांस्कृतिक उन्मेष का अनुभव किया जा सकता है। 'उत्तर-स्वप्न' में समदिक् पर शाश्वत का प्रसार कवि इस प्रकार देखता है-

मन को न ऊर्ध्व सोपानो पर,
करना पडता निर्मम रोहण,
अब समदिक् जीवन पथ पर ही,
शाश्वत शोभा करती विचरण।
(लोकायतन, पृ० ६६१)

ऊर्ध्व चेतना की ओर चलना ही अरविन्द के योग दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। अत पन्त जी भी इस नवीन चेतना के सम्बन्ध मे अनेक कल्पनाये करते है। अरविन्द ने इस चेतना को अनुभूति के माध्यम से ग्रहण किया और पन्त ने कल्पना के माध्यम से। पत जी का नव मानववाद, भौतिकता का अध्यात्म से समन्वय, जड का चेतन से समिश्रण, पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की कल्पना, आत्म-सत्य इत्यादि सभी भावनाये अरविन्द दर्शन के प्रभाव का ही फल हैं। यहा उनकी भावधारा धर्म बंधनों को तोड़कर आत्मा की चेतनता की साधना में संलग्न दिखाई देती है। साथ में ईश्वर पर भी आस्था उनकी निरन्तर बनी रही है।

(इ) रवीन्द्र नाथ टैगोर

कवि पंत जी का व्यक्तित्व मननशील है। उन्होंने अपने देश के और अन्य देशों के साहित्य का अच्छा अध्ययन, मनन किया, उन पर उनकी इस साहित्य अनुशीलन प्रवृत्ति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य का भी उन्होंने अध्ययन किया, क्योंकि उस समय रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' को नोबुल

पुरस्कार मिल चुका था। इनकी कविताओ से पन्त जी की सौन्दर्य चेतना बलवती हुई। पन्त जी ने अपने ऊपर पड़े प्रभावो को सहर्ष स्वीकार किया है। महाकवि निराला ने पन्त और रवीन्द्र की कविताओं की पंक्तियो को उद्धृत कर साम्य दिखलाया है और कहा है कि पन्त जी चौर्य कला मे निपुण हैं। इस बात की पुष्टि के लिए निराला जी ने साम्य रखने वाली पंक्तियों की एक लम्बी सूची दी है।[1] जिनमें कुछ इस प्रकार हैं-

(१) 'मन्त्र मुग्ध हो अन्ध समीरण
लगा थिरकने विविध प्रकार। - पन्त
'तोमार मदिर गन्ध अन्ध वायु बहे चारिभिते' - रवीन्द्रनाथ

(२) ' ......अतल के बतलाते जो भेद अपार।' - पन्त
'अतल रहस्य येन चाय बलिवारे'। - रवीन्द्रनाथ

(३) 'नीरव घोष भरे शंखों में।' - पन्त
'नीरव सुरेर शंख बाजे। - रवीन्द्रनाथ

(४) 'मेरे आँसू गूँथ।' - पन्त
'गेथेछि अश्रुमालिका।' - रवीन्द्रनाथ

(५) 'शस्य शून्य वसुधा का अञ्चल' - पन्त
'शस्यशीर्षराशि धरार अञ्चलतल भरि' - रवीन्द्रनाथ

(६) 'विपुल वसना विकच विश्व का मानस शतदल।' - पन्त
'विकसित विश्व वासनार अरविन्द....।' - रवीन्द्रनाथ

(७) 'आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इङ्गित पर करता नर्तन।' - पन्त

---

१. प्रबन्ध पद्म, पृ० ५४-५६-५९ और ६२

'तरगित महासिधु मन्त्रशान्त भुजगेर मत।
पडेछिल पदप्रान्ते उच्छ्वसित फणा लक्षशत करि अवनत।' -

रवीन्द्रनाथ

इस प्रकार के उद्धरणो द्वारा महाकवि निराला ने पन्त की मौलिकता पर आक्षेप किया है, जो उचित नही है। यह प्रभाव तो "अचेतन-चेतन प्रक्रिया" के कारण है, जिससे बिरले ही बच पाते है। वस्तुत कवि की मौलिकता उसकी अभिव्यक्ति में निहित है।

पन्त की प्रारम्भिक वीणा-सीरीज की कविताओ पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है। उनके चित्ररेखाकार श्री दीनानाथ पन्त के अनुसार रवीन्द्र तथा सरोजनी नायडू की कविताओ से उनके भीतर एक प्रकार के अस्पष्ट सौन्दर्य बोध तथा माधुर्य का जन्म हुआ। इसी समय जब वे काशी में पढते थे, 'उन्होंने बंगला का भी थोडा बहुत अध्ययन किया और 'चयनिका' तथा 'गीताजलि' की कविताओ का रस लिया। 'मम जीवन का प्रमुदित प्रात' गीत पर रवि बाबू के 'अन्तर मम विकसित कर' की छाया है। 'वीणा' की बाल सुलभ कल्पना और किशोर भावना से परिपूर्ण गीतों में प्रकृति के प्रति अतीव मोह एवं महान आश्चर्य की भावना है। प्रकृति का रम्य क्रोड़ उसे मानव के द्वारा निर्मित जग के स्वर्गोपम सौन्दर्य के समक्ष अतुलनीय प्रतीत होती है। उषा के आलोक से झिलमिल किसलयों पर 'सुधारश्मि से उतरा जल' उसको प्रेयसी के अधरामृत से अधिक प्रिय है-

"ऊषा सस्मित किसलय दल,
सुधा रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?
भूल अभी से इस जग को।"

वीणा की अनेक रचनाएँ प्रार्थनापरक है जिन पर रवीन्द्रनाथ की छाया स्पष्ट है। यह कविताएँ अधिकाशत विश्वप्रेम की पावन भावना से पुलकित है। वीणा मे पत ने अभिलाषा की है-

"विश्वप्रेम का रुचिकर राग,
पर सेवा करने की आग
इसको सध्या की लाली-सी,
माँ, न मद पड जाने दे।
देश द्रोह को साध्य जलद-सा,
इसकी छटा बढाने दे।"

वीणा की कविताओ मे आत्मोत्सर्ग की भावना भी प्रबल है। कवि की इच्छा है कि वह 'कुमुद किरणो' के द्वारा उतरकर 'तुहिन बिन्दु' बनकर माँ के पद प्रक्षालित करे। ओसकण बनकर उषा की जीवन लाली में अपने प्राणो को समर्पित कर दे अथवा तरल तरगो की हिलोरो के रूप मे प्रकट होकर अपने कोलाहल से उसके श्रुतपुटो को भर दे। वह प्रकृति माँ की आभा आलोक को प्राप्त कर समस्त ससार का तिमिर त्रास हरने का इच्छुक है। कवि ने अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति 'वीणा' की आकाक्षा नामक कविता मे की है। आत्मोत्सर्ग की भावना इस कविता में बडे व्यापक रूप मे चित्रित की गई है-

"तुहिन बिन्दु बनकर सुन्दर,
कुमुद किरण से सहज उतर
माँ तेरे प्रिय पद्मों मे,
अर्पण जीवन को कर दूँ
इस उषा की लाली में।"

कहना न होगा कि विश्वप्रेम और आत्मोत्सर्ग की यह भावनाएँ जो वीणा की स्वर लहरी की तीव्र ध्वनियाँ हैं, बहुत कुछ अंशों में विश्व कवि की गीतांजलि

से प्रेरित एव प्रभावित हैं। इसी प्रकार पत जी की इन पक्तियो मे उन पर रवीन्द्र की कितनी गहरी छाप है स्वत ही स्पष्ट हो जाता है-

''मम जीवन की प्रमुदित प्रात,
सुन्दरि! नव आलोकित कर,
गुजित कर, कल कुञ्जित कर,
खिला प्रेम का नव जलजात।
बढा कनक कर निज मृदुतर।''

- पन्त

तथा-

''अतर मम विकसित कर अंतरतर हे!
निर्मल कर, उज्ज्वल कर, सुन्दर कर हे।
जाग्रत कर, उद्यत कर, निर्भर कर हे।
मगल कर, निरलस कर, नि शसय कर हे।।''

- रवीन्द्रनाथ टैगोर

(ई) स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, उपनिषद एवं अन्य छुटपुट प्रभाव

विवेकानन्द रामतीर्थ एवं उपनिषदों का प्रभाव

पंत जी बाल्यावस्था से ही विवेकानन्द जी से प्रभावित थे। 'वीणा' की कुछ कविताओं में विवेकानन्द के आध्यात्मिक विस्तारवारवाद का प्रभाव दृष्टिगत होता है-

''विश्व प्रेम का रुचिकर राग,
परसेवा करने की आग।
इस को संध्या की लाली सी,
माँ, न मद पड जाने दे।
द्वेष-द्रोह को साध्य जलद सा,
इसकी छटा बढाने दे।''

---

१ वीणा-सुमित्रानन्दन पत, पृ० २३

इन पक्तियो मे विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इनका मानवतावाद वेदान्त दृष्टि का ही एक विस्तार है जिसका प्रभाव विवेकानन्द पर पड़ा-'गरज रहे थे अन्तर उर्वर, दीप्त विवेकानन्द वचन धन।'[1]

विवेकानन्द का दर्शन आध्यात्मिकता के माध्यम से राष्ट्र की सेवा करना है और रामतीर्थ का दर्शन जगत के माध्यम से आध्यात्मिकता को प्राप्त करना है। कवि के मानस पर इन दोनो दर्शनो का प्रभाव पडा। 'पल्लव' की रचना 'परिवर्तन' में कवि का यह चितन दर्शनीय है। उसमे सृष्टि के परिवर्तनशील रूप की व्यंजना कवि ने बडी कुशलता से की है। उसका विचारक प्रारम्भ से ही जागरूक है, 'वीणा' और 'ग्रन्थि' काल की कविताओ मे भी चिन्तन के कण बिखरे मिल जायेंगे, लेकिन परिवर्तन मे कवि पत के विचारक का निखरा रूप उपलब्ध होता है। पल्लव तक आते-आते उसका विचारक प्रौढ हो उठा है और वह ससार की अशाति से विकल होकर पुकार उठता है-

एक सौ वर्ष नगर उपवन, एक सौ वर्ष विजन वन।
यही तो है असार ससार, सृजन, सिंचन, सहार।।

इस नश्वरता अनश्वरता के ज्ञान के साथ कवि को जग की नित्यता-अनित्यता का आभास होता है, उसे जग के रहस्य को सुलझाने का सकेत सा मिलता है और यहॉ उसे सर्वत्र एक ही शक्ति के दर्शन होते हैं, कवि चिंतन के इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि एक ही असीम आनन्द सर्वत्र व्याप्त है और विश्व में उसके ही विविध रूप प्रकट होते हैं। कवि पन्त ने उल्लेख करते हुए कहा है कि- ''स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से, प्रकृति प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई।

---

१. वाणी-अतिक्रम-सुमित्रानन्दन पत, पृ० ११५

'परिवर्तन' मे इस विचारधारा का काफी प्रभाव है। दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व मे मथन पैदा कर दिया और उसके प्रभाव की दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओ के ससार मे कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। किन्तु दर्शन का अध्ययन, विश्लेषण की पैनी धार से जहा जीवन के नाम, रूप, गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि मे भटकाता है वहॉ वह छिलके मे फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसे सर्वातिशयता चित्र को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर कर दिया।"[१]

पंत जी के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि वे विवेकानन्द और रामतीर्थ आदि महात्माओ के साथ ही भारतीय दर्शन के विचारो से भी प्रभावित थे। उदाहरण ध्यातव्य है-

> नित्य का यह अनित्य नर्तन, विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
> अचिर मे चिर का अन्वेषण विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन।
> अतल से एक अकूल उमड्ग, सृष्टि की उठती तरल तरड्ग।
> उमड शत शत बुदबुद ससार बढ जाते निस्सार।
> बना सैकत के तट अतिवास गिरा देती अज्ञात।[२]

ऊपर की पंक्तियो मे कवि ने भारतीय दर्शन के एक सिद्धान्त विवर्तनवाद को बतलाया है, जो गीता में इस प्रकार है-'आब्रह्मा भुवनाल्लोका· पुनरावर्तितो जनः' अर्थात् समस्त लोक और भुवन पुनरावर्ती हैं। सृष्टि और प्रलय संसार के विवर्तन के स्वरूप है। इन सबों का मूल कारण, जो व्यय नहीं होता, वह अव्यक्त ब्रह्म है। अर्थात् सृष्टि के विनाश होने पर भी जो अव्यय रहता है वह अक्षर ब्रह्म

---

१ पन्त-'गद्य पथ'- पृ० ४६-५०
२ 'पल्लव- परिवर्तन, पृष्ठ १०४

है, वही सबका ज्ञेय है। यही भाव कवि ने 'अचिर मे चिर का अन्वेषण' पक्ति मे व्यक्त किया है। ''शत शत बुद्बुद्'' कहकर कवि ने सृष्टि के स्वरूप को समझाने का प्रयास किया है, जो गीता मे इस प्रकार है-'भूतग्राम' स एवाय भूत्वा भूत्वा प्रलीयते'। 'अचिर मे चिर का अन्वेषण' कहकर जो दार्शनिक सिद्धान्त निरूपित किया गया है, उसे कवि ने निम्नाङ्किकत पक्तियो में उदाहरणो के द्वारा पुष्ट किया है, जो भारतीय वेदान्त पर आधृत है-

एक छवि के असख्य उड्गण, एक ही सब मे स्पन्दन
एक छवि के विभात में लीन, एक विधि के अधीन।
एक ही लोल लहर के घोर उभय सुख दुख, निशि भोर,
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण ससार, सृजन ही है ससार।'[1]

इस छंद से स्पष्ट है कि अचिर भाव क्या है और उसमे समान रूप से विद्यमान रहने वाली चिर वस्तु क्या है। कवि ने जो उदाहरण दिये हैं, वे हैं-'असंख्य उड्गण, लोल लहर के छोर, सुख-दु ख, निशि भोर और त्रिगुण संसार।' इन पंक्तियो को लिखते समय कवि के मस्तिष्क मे भारतीय वेदान्त और गीता की बाते रही है। कवि ने उदाहरणों के माध्यम से जिन बातो को समझाया है, वेदान्त मे इस प्रकार हैं-

''तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासासर्वमिद विभाति।''

अर्थात्, उसी प्रकाशमान ब्रह्म का एक ही प्रकाश, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, नक्षत्र आदि पदार्थों मे भिन्न-भिन्न रूप मे प्रतीत होता है। और यह भी कहा गया कि ब्रह्म स्वय तो अविभक्त है और एक है, किन्तु असख्य जड़ चेतन पदार्थों में भिन्न-भिन्न सा प्रतीत होता है। ('अविभत्त च भूतेषु विभक्तमिव-

---

१ 'पल्लव- परिवर्तन, पृष्ठ १०५

चस्थितम्')। इसी प्रकार गीता और पन्त की पक्तियों में पर्याप्त समानता दिखाई देती है-

'वासासि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि बिहाये जीर्णान्यन्यानि,
सयाति नवानि देही।।' (गीता)
मूँदती नयन मृत्यु की रात,
खोलती नव जीवन की प्रात।

× × ×

महत् हे, अरे, आत्म बलिदान,
जगत केवल आदान-प्रदान।
('पन्त ,पल्लव'- परिवर्तन)

कवि भारतीय दर्शन से काफी प्रभावित है। कहीं-कहीं तो पंत ने दर्शन के भाव का एकदम उसी रूप में चित्रण कर दिया है और कहीं-कहीं उसे कल्पना के सयोग से रससिक्त कर दिया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

'निराकार तम मानों सहसा,
ज्योति पुज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत जाल मे,
धर कर नाम रूप नाना।'
('प्रथम रश्मि')

अव्यक्ताद् व्यक्तय सर्वा प्रभवन्दयवृरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके।।'
(गीता)

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख,
सुख-दुःख की खेल मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख।
(सुख-दुःख)

'सुख-दु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्वस्व नैव पापमवाप्स्यसि।।
(गीता)

× × ×

हमारे काम न अपने काम,
नही हम जो हम ज्ञात।
अरे निज छाया मे उपनाम,
छिपे है हम अपरूप
गॅवाने आए है अज्ञात गॅवा,
कर पाते स्वीय स्वरूप।
('पल्लव'-परिवर्तन)
'यथा नद्य· स्यन्दमाना समुद्र अस्त,
गच्छन्ति नाम रूप विहाय।'
-(उपनिषद्)

× × ×

प्राण! तुम लघु लघु गात।
नील नभ के निकुञ्ज मे लीन,
नित्य नीरव, नि सड्ग नवीन,
निखिल छवि की छवि।
तुम छबि हीन, अप्सरी सी अज्ञात।
('गुञ्जन' वायु के प्रति)

अणोरणीयान् महतो महीयान्,
आत्मास्य जन्तोनिहतो गुहायाम्
यथा सर्वगत सौक्ष्म्यात् आकाशं नोपलिप्यते।
तवत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य,
भासा सर्वमिद विभाति।
(उपनिषद्)

पन्त दार्शनिक सिद्धान्तो से प्रभावित हुए, पर युग के परिवेश मे उनके विचार गतिशील है। मानसिक अशान्ति, वैचारिक मन्थन और उनिद्र रोग के

कारण उनकी कल्पना सौन्दर्य लोक मे विचरण न कर ससार के मच पर तैरने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि कवि चिन्तक बन गया। 'गुञ्जन' मे पंत मानव का कवि बन गया। 'गुञ्जन' से ही उनकी चिन्तन प्रक्रिया में परिवर्तन आता है और वह सुखी समाज के निर्माण मे लग जाते है।

अन्य प्रभाव

कवि पत पर प्रारम्भ से तो छुटपुट रूप मे अन्य प्रभाव भी पडे जिनका उल्लेख करना न्यायसंगत होगा। पत जी शिक्षा प्राप्ति के लिए गॉव से शहर मे आए तो प्रकृति के माधुर्य के मध्य अपनी ही भावनाओ मे डूबे व्यक्ति का मोह भग हुआ और उनका दृष्टिकोण व्यापक होने लगा। यहॉ सबसे अधिक प्रभाव उन पर स्वामी सत्यदेव के भाषणो का पडा जो भाषा-प्रेम और देश-प्रेम से ओत-प्रोत होते थे-

देश भक्ति के साथ मोहिनी,
मंत्र मातृभाषा का पाकर।
प्रकृति प्रेम मधुरस मे डूबा,
गूॅज उठा प्राणों का मधुकर।[1]

दूसरा विशिष्ट प्रभाव स्वामी जी के काव्य पाठ का हुआ, जिससे उनके मन मे यह धारणा दृढ हो गयी कि कविता गेय होना चाहिए। स्वामी जी के प्रयत्नो से ही शहर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नामक एक सार्वजनिक पुस्तकालय भी खुल गया जो कई वर्षों तक रहा भी। इसमें उस समय की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ, काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवनी आदि ग्रन्थों का संग्रह था। पंत का साहित्यिक मन यहॉ उचित खाद्य प्राप्त कर अंकुरित होने लगा। स्वभाव

---

१ वाणी (आत्मिका) - सुमित्रानन्दन पत, पृ० ११६

से एकान्तप्रिय व अन्तर्मुखी होने के कारण साहित्य के प्रति उनका अनुराग दिन पर दिन बढता गया। उन्होने स्वय लिखा है-"उन दिनो अल्मोडे, मे जो स्वामी सत्यदेव आदि बडे लोगो के भाषण होते थे उनमे देश-सेवा और लोक सेवा का ही स्वर मुख्य रहता था। उन सब परिस्थितियो तथा बौद्धिक वातावरण का लाभ उठाकर मैने अपने विचारो तथा भावनाओ को व्यवस्थित वाणी देने के अभिप्राय से ही सम्भवत 'हार' नामक उपन्यास की रचना की होगी।"[1] इस 'हार' नामक उपन्यास की रचना पत जी ने सन् १६१६-१७ मे की थी, इसमे उनकी उस समय की मनोदशा का चित्रण हुआ है। अपने भाई से सुनी हुई रीतिकालीन कवियो की श्रृंगार भावना, शकुन्तला की प्रेमकथा, मेघदूत की वियोग कथा, बिहारी सतसई का एकान्त प्रणय निवेदन व रूप वर्णन आदि सब का प्रभाव इस उपन्यास में है। निश्चय ही पंत का किशोर मन मस्तिष्क विकास की दिशा मे प्रयत्नशील था।

पंत जी पर किशोर वय मे ही बाइबिल का प्रभाव पडा, वे अपने शिक्षाकाल मे बनारस आये यहा पर स्कूल के प्रिसिपल मिस्टर हिल के बाइबिल पढाने के ढंग से प्रभावित होकर पंत ने बडे मनोयोग से बाइबिल पढा। वे लिखते है- 'लुक ऐट द लिलीज आफ द फील्ड हाउ दे ग्रो' कहने वाले महान अन्तर्द्रष्टा ने मेरे भीतर जीवन के स्वत स्फूर्त, सूक्ष्म, अन्त सौन्दर्य का रहस्य खोल दिया। सब मिलाकर बाइबिल के अध्ययन ने संसार की अचिरता और 'परिवर्तन' के विषाद से भरे हुए मेरे अन्त करण को अद्भुत नवीन विश्वास का स्वास्थ्य तथा अमरत्व प्रदान किया।"[2] "जिस ग्रन्थ ने अपनी पवित्र मधुर छाप मेरे हृदय में अकित की है, वह है बाइबिल का न्यू टेस्टामेण्ट। बाइबिल भी उदार

---

१ शिल्प और दर्शन- सुमित्रानन्दन पत, पृष्ठ २२२
२ शिल्प और दर्शन-सुमित्रानन्दन पत, पृष्ठ १८६

मधुर प्रकृति की तरह अनजाने ही अपने आप मेरे भीतर के जीवन का एक अमूल्य अग बन गयी।''[१] सर्वप्रथम बनारस मे ही थियोसोफिकल सोसाइटी मे पत ने रवीन्द्र के दर्शन किये और उनके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए।

पंत जी को श्रीमती सरोजनी नायडू की कविताऍ बहुत भाती थीं। उनका शब्द संगीत कवि के मन मे माधुर्य घोल देता। वे बहुधा 'गेली ओर गेली वी ग्लाइड एज वी सिग, वी विदर हर एलाग लाइक ए-पर्ल आन ए स्ट्रिङ्ग' 'पैलेक्विन बेयरर्स' नामक उनकी रचना की पक्तियां गुनगुनाया करते।[२] इसके अतिरिक्त इनकी प्राकृतिक सौन्दर्य व प्रेम संबंधी अनेक कविताऍ इन्हें याद थीं।

पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से कवि के व्यक्तित्व पर पडा। 'नेहरू युग' तथा 'पडित जवाहरलाल नेहरू के प्रति' नामक कविताऍ इसकी परिचायक है-

> ''जय निनाद करते जन, हे जनगण के नायक,
> इस विशालतम जनसमुद्र के भाग्य विधायक!
> ज्योति रत्न तुम भारत के, हृदयोज्जवल, चेतन,
> प्राणो की स्मित रगश्री से बहुमत शोभन।
> फूलो के बाणो का रच नव कुसुमित तोरण
> अभिनन्दन करता नव भारत का नव यौवन।''[३]

कवि पत की प्रारम्भिक कविताओं पर महर्षि दयानन्द का भाषा संबंधी प्रभाव भी लक्षित होता है। समष्टि रूप मे पंत पर अनेकानेक प्रभाव पड़े है, जो उनकी अध्ययनशीलता अथवा मननशीलता का परिचायक है। इन प्रभावो को पंत ने मात्र रूपान्तरित करके नहीं रखा, वरन् उसमें अपनी अनुभूति का प्राण संचार

---

१ वही, पृष्ठ १८५
२ साठ वर्ष एक रेखाकन - सुमित्रानन्दन पत
३ स्वर्ण किरण - सुमित्रानन्दन पत, पृष्ठ ३६

करके मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया है। तथा समस्त प्रभावो को उन्होने अपने मनोनुकूल रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने किसी भी प्रेरणा स्रोत को केवल उसी रूप मे स्वीकार किया है जिस रूप में उनके हृदय को अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। उन्हे अपनी दृष्टि से जो विकृत या अनुचित लगा उसको उन्होंने त्याग दिया। अत· पत ने अपनी रचनाओ को नवीन विचारधारा के अनुसार निरन्तर विकास की ओर अग्रसर करते हुए उन्हें मौलिक रूप में समझा और समझाया है।

(उ) पंत का अपना व्यक्तित्व

पत जी पर अपने समय की स्पष्ट छाप है। उन्होने जिन परिस्थितियो और जिन तत्वो से प्रेरित होकर काव्य सर्जन किया है उसका स्पष्ट आभास उनके कृतित्व में है। पत का व्यक्तित्व इस समय के सर्वाधिक गत्यात्मक चरित्रो (Dynamic Characters) मे गिना जा सकता है। उनमे समाज की प्रत्येक धडकन का आभास है, प्रत्येक स्पन्दन की छाया है, प्रत्येक विश्वास का बिम्ब है और साथ ही निज की अभिव्यक्ति भी है। उन्होंने अपने जीवन मे जो कुछ भी देखा सुना, पढ़ा है उसको आत्मसात कर बडे मनोहर ढग से वर्णित किया है। पत मे अनुभूति का अभाव सदैव से रहा है जिसके अभाव की पूर्ति उन्होने कभी कल्पना से और कभी चिन्तन से की है। इस चिन्तन मनन में उन्होंने बहुत अधिक साहित्य का अनुशीलन किया है। देश-विदेश के साहित्य को पढ़ा और बडे-बडे दार्शनिको को समझा है। इस चिन्तन मनन के पथ में जो कुछ भी उन्हे प्रभावित करता रहा उसको उन्होने अपने काव्य मे यथास्थान अभिव्यक्त किया है। उन्होने अपने ऊपर पड़े प्रभावों को और अपने प्रेरणा स्रोतों को अपनी भूमिकाओं तथा प्रस्तावनाओं में स्वीकार भी किया है।

कवि पन्त ने प्रतिमा और व्युत्पत्ति को काव्य रचना का प्रेरक तत्व मानते हुए अध्ययन और लोकदर्शन को अधिक महत्व दिया है। गुजन की यह पक्ति विशेष ध्यातव्य है-'न पिक प्रतिभा का कर अभिमान, मनन कर, मनन, शकुनि नादान।'[१] उन्होने अपने ऊपर पडे प्रभावो और प्रेरणा स्रोतो को भिन्न-भिन्न संङ्कलनो की भूमिकाओ और प्रस्तावनाओ मे खुले दिल से स्वीकार किया है, उनमे किसी भी प्रकार का दुराव छिपाव नही है। इस सम्बन्ध मे उनकी कुछ उक्तिया दृष्टव्य है-

(क) अपने पूर्ववर्ती सभी महान कवियों के ऐश्वर्य को मैंने शिरोधार्य किया है और अपने समकक्षियो तथा सहयोगियो की प्रतिभा का भी मैं प्रशंसक तथा समर्थक रहा हूँ।[२]

(ख) अपने समय के प्रसिद्ध कवियो की रचनाओं से ही किसी न किसी रूप में प्रभावित होकर उदीयमान कवि अपनी लेखनी की परीक्षा लेता है।[३]

(ग) 'पल्लव' काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अग्रेजी कवियों-मुख्यत शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियो ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की मशीन युग की सौन्दर्य कल्पना ही में परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का नारा भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। और यदि लिखना एक अनकॉन्सस-कॉन्सस प्रोसेस है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का

---

१ गुजन, पृष्ठ १०५

२ गद्य पथ, पृष्ठ २३९

३ रश्मिबन्ध, परिदर्शन, पृष्ठ १

यत्र-तत्र उपयोग भी किया है, और उसे अपने विकास का अग बनाने की चेष्टा की है।[1]

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि पन्त ने अध्ययन को काव्य हेतु माना है, फिर भी लोक दर्शन पर अधिक बल दिया है। इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होने लिखा है-"स्वभाव से ही अत्यन्त भावप्रवण तथा कवि होने के कारण मेरी रूचि पुस्तको की ओर अधिक नहीं रही। मैने व्यक्तियो के जीवन से, परस्पर के जन समागम से, तथा महान पुरूषों के दर्शन एवं उनके मानसिक सत्संग से कहीं अधिक सीखा है, जिसे मै सहज सीखना या सहज शिक्षा कहता हूॅ। इससे भी अधिक मैने प्रकृति के मौन मुखर सहवास से सीखा है।[2] इस कथन से यह साफ जाहिर है कि कवि ने अध्ययन से बढ़कर, लोक दर्शन से बढकर, प्रकृति दर्शन को सबसे ज्यादा महत्व दियाहै। अतएव स्पष्ट है कि पन्त के व्यक्तित्व के निर्माण में अध्ययन, मनन और चिन्तन के साथ-साथ पर्यवेक्षण शक्ति का भी हाथ है। इसीलिए भावो और विचारों की परिवर्तनशीलता उनकी कविता की एक बहुत बड़ी खूबी है।

पन्त जी को कविता की आदिम प्रेरणा प्रकृति से मिली।[3] इसका श्रेय उनकी जन्मभूमि कौसानी को है जिसे पन्त ने 'प्रकृति का रम्य श्रृंगार गृह' कहा

---

१ गद्य पथ- पृष्ठ ५७

२ गद्य पथ, पृष्ठ १७२-३

३ (क) कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद हैं, मैं घन्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।' -पन्त-'आधुनिक कवि' पर्यालोचन, पृष्ठ १

(ख) 'जब मैंने लिखना प्रारम्भ किया था तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वातावरण ही एक ऐसी सजीव वस्तु थी जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी और किसी भी ऐसी परिस्थिति या वस्तु की मुझे याद नहीं जो मेरे मन को आकर्षित कर मुझे गाने अथवा लिखने की ओर अग्रसर करती रही हो। पन्त-'गद्य पथ', पृष्ठ १२४

(ग) 'मेरे भीतर ऐसे सस्कार अवश्य रहे होंगे जिन्होंने मुझे कवि कर्म करने की प्रेरणा दी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत प्रदेश की दिगन्त व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की।' रश्मि बन्ध- भूमिका, पृष्ठ २

है।[1] मातृहीन बालक पन्त को मातृ-प्रकृति ने अपने विशाल स्नेहिल अग का प्रश्रय ही नही दिया, प्रत्युत् उसने वह सब दिया जो एक स्नेहिल धात्री दे सकती है। पन्त के लिए प्रकृति ही सब कुछ बन गयी। उसने कवि के जीवन में अविचल सम्बल का काम किया उसके अव्यक्त सौन्दर्य ने कवि की चेतना को तन्मय कर दिया उसमे आश्चर्य की भावना भर दी और कवि कल्पना जीवी बन गया।

प्रकृति ने पत को विभिन्न रूपो मे आकर्षित किया है। उनके छायावादी काल की रचनाओ मे प्रकृति के अनेकानेक आकर्षक चित्र बिखरे पडे हैं। कहीं वह कवि को महत आश्चर्य से विस्मित कर देती है, और कहीं अव्यक्त सौन्दर्य भावना से पुलकित। कहीं वह नक्षत्रो, कलियो, लहरियो के माध्यम से कवि को अज्ञात और असीम का संदेश सुनाती है और कहीं तडित के रूप मे प्रकट होकर कवि के हृदय मे प्रियतमा का ध्यान दिला देती है जिससे उसके प्राण जुगुनुओ की भांति उड-उडकर उसे खोजते फिरते हैं-

तड़ित सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक भार, उर चीर।
गूढ़ गर्जन कर जब गभीर
मुझे करता है अधिक अधीर।
जुगुनुओ से उड मेरे प्राण
खोजते है तब तुम्हें नादान।

कहीं-कहीं कवि ने अपनी भावनाओ को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करने के स्थान पर प्रकृति को ही भावनात्मक रूप में चित्रित किया है। 'गिरिवर के उर' से उठे ऊँचे-ऊँचे तरुवर उसे उच्चाकांक्षाओं के समान प्रतीत होते हैं और उन

---

१ पन्त गद्य पथ, मेरा रचना काल, पृष्ठ ११५

पर झुक कर देखने वाला शात नीरव नभ किसी अनिमेष अटल चिंतापर व्यक्ति का स्मरण कराता है-

> "गिरिवर के उर से उठ-उठ कर,
> उच्चाकांक्षाओं से तरुवर।
> है झाक रहा नीरव नभ पर,
> अनिमेष अटल कुछ चिता पर।"

पत ने अधिकतर प्रकृति के कोमल, सुन्दर, स्निग्ध स्वरूप को ही ग्रहण किया है। परिवर्तन मात्र एक अपवाद है। परन्तु प्रकृति के कवि की यह सौन्दर्य भावना और मोह सदैव नही रहा है। पंत ने युगवाणी के दृष्टिपात में लिखा है- "युगवाणी में आप टेढ़ी-मेढी पतली ठूँठ टहनियो के वन का दूर तक फैला हुआ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय सौदर्य देखेगे, जिससे नव प्रभात की सुनहली किरणें बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई है, जहा ओसो से झरते हुए अश्रु आगत स्वर्णोदय की आभा मे हॅसते हुए से दिखाई देते हैं, जहा शाखा प्रशाखाओ के अन्तराल मे जिनमे अब भी कुछ विवर्ण पत्ते अटके हुए है-छोटे बडे तरह-तरह के भावनाओं के नीड, जाडो की ठिठुरती कॉपती हुई महानिशा के युगव्यापी त्रास से मुक्त होकर नवीन कोपलो से छनते हुए नवीन आलोक तथा नवीन उष्णता का स्पर्श पाकर फिर से सगीत मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

'युगवाणी' मे प्रकृति का वस्तुतः ऐसा ही 'वासासि जीर्णानि यथा विहाय' सौन्दर्य मिलता है। युगवाणी मे कवि के मनः द्वन्द्व मे जो निरन्तर प्रकृति और मानव के बीच चल रहा था, प्रकृति की पराजय घोषित हुई और उसके स्थान पर मानव को प्रतिष्ठित किया है-

हार गई तुम
प्रकृति।
रच निरूपम
मानव कृति।
निखिल रूप, रेखा, स्वर हुए निछावर
मानव के तन मन पर। × × ×
जीवन रण में प्रति क्षण
कर सर्वस्व समर्पण।
पूर्ण हुई तुम प्रकृति
आज बन मानव की कृति
(युगवाणी)

परन्तु स्वर्ण किरण, उत्तरा आदि परवर्ती रचनाओ मे पन्त के प्रकृति के वैसे ही अनुराग के दर्शन होते है जैसे 'पल्लव' और 'गुजन' मे है। रूप रग का उतना ही वैभव इनमे है जितना पल्लव कालीन रचनाओ मे है। उससे भी अधिक ये प्रकृति चित्र इन्द्रिय सवेदनाओ से मुक्त सात्विक उल्लास और निर्मल आलोक की सृष्टि करते हैं। अब भी कवि की सौन्दर्य साधना, हिमाद्रि को देखकर महाश्चर्य से विस्मित हो जाती है, कवि उसको अपना शिक्षक मानता है-

''आज जीवनोदधि के तट पर,
खडा अवाछित, क्षुब्ध उपेक्षित।
देख रहा मैं क्षुद्र अह की,
शिखर लहरियो का रण कुत्सित।
सोच रहा किसके गौरव से,
मेरा यह अन्तर्जग निर्मित।
लगता तब हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित।''

अलक्षित सत्ता में इस प्रकार विश्वास करने से कि यह प्रकृति भी उसी सत्ता का एक बाह्य स्वरूप है, प्रकृति के प्रति कवि के दृष्टिकोण में एक महान परिवर्तन दिखाई पड़ता है। प्रकृति पुरूषोत्तम का निवास स्थान भी है, क्योंकि वह

अन्तर्यामी है और उसका बाह्य स्थूल रूप भी है। जब कवि प्रथम दृष्टिकोण से प्रकृति को देखता है तब ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व का वर्णन होता है। किन्तु दूसरे दृष्टिकोण से जब कवि प्रकृति को देखता है तो स्थूल वस्तु सूक्ष्म सत्य को आवृत्त करने वाली भी बन जाती है। पन्त जी के अनुसार वस्तु का आन्तरिक सौन्दर्य ही बाहर प्रकाशित होता है, अत नश्वर व अनित्य प्रकृति मे जो सौन्दर्य दिखाई पडता है वह पूर्णतया सत्य है, परन्तु उनके नीचे दृश्यमान सौन्दर्य का कारणभूत सौन्दर्य छिपा रहता है। पन्त जी कारणभूत व बाह्य दृश्यमान सौन्दर्य दोनो को सत्य मानते है, क्योकि बाह्य सत्य व सौन्दर्य आन्तरिक सत्य व सौन्दर्य का ही प्रकाशन है। परन्तु सौन्दर्य इन्द्रियो से ग्रहीत होता है और केवल मन के निम्न स्तरों को ही प्रभावित करता है। यदि हम ऊर्ध्व स्तरो से परिचित नहीं होते तो यह सौन्दर्य हमें निम्न स्तरो तक ही रोक लेता है और प्राणमय, मनोमय कोशो तक ही रह कर ऐन्द्रिय सौन्दर्य की प्यास को बुझाता रहता है। फलतः शब्द, स्पर्श, रूप और रस का आनन्द हमारी इन्द्रियो को इतना विभोर करता है कि हम इन्द्रियातीत आनन्द की ओर उन्मुख नहीं हो पाते जो जीवन का मुख्य उद्देश्य है और जहॉ असीम और सच्चा सौन्दर्य अवस्थित है। पन्त जी इसी अतीन्द्रिय सौन्दर्य का उद्घाटन करने के लिए प्रकृति वर्णन करते है। अन्तश्चेतना मे विश्वास के कारण जब कवि चारो ओर प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा को देखता है तो उसमे एक नूतन आध्यात्मिक सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है।

देवों को पहना रहा पुन·
मैं स्वप्न मांस के मर्त्य वसन
मानव आनन से उठा रहा,
अमरत्व ढॅके जो अवगुण्ठन।

इस दृष्टि से प्रकृति का बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य को अपने मे छिपाये हुए है। प्रतीति के कारण प्रकृति का यह रूप दर्शन तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन उत्तरा मे मिलता है-

> ''कौन भेजता मौन निमन्त्रण
> मुझे निभृत देने हृदयासन
> स्वप्नो के पट मे लपेट कर
> तन मन करता शीतल।''

प्रकृति मे स्वतः सौन्दर्य का निवास नहीं हो सकता। प्रकृति के भीतर भी उस दिव्य सत्ता से मिलने की भावना विद्यमान है-

> ''मूलभूत कामना एक ज्यों
> पत्रो मे कप उठती मर्मर,
> प्रिय निसर्ग ने अपने जग मे
> खोल दिया फिर मेरा अन्तर।''

इस प्रकार सौन्दर्य को, सकेतो को, उसके भीतर अवस्थित कामना को पहचानने का कवि प्रयत्न करता है। इसका उद्‌देश्य वस्तु का कोरा चित्रण नहीं है। अवरोधो व विरोधो मे सामजस्य खोजने के कारण समन्वय का मूलभूत तत्व शशि लेखा के समान कवि के हृदय मे उदित हो गया है अतः अब यह सुन्दरता बन्धनकारिणी नहीं रही।

> ''मैं सुन्दरता मे स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण
> वह बने न बन्धन''।

कवि रमणीयता व विश्वास को साथ-साथ चाहता है। वह जानता है कि विश्वास रहित रमणीयता कोरी कल्पना का विलास है।

शैली, कीट्स, व टेनिसन आदि से विशेष प्रभावित हुए। उनकी सन् २६ तक की कविताओं मे यह प्रभाव दिखाई देता है। इन कवियो की विशेषताएँ स्वत उनके काव्य में आ गईं। 'उच्छवास', 'ऑसू', 'बादल', 'अनग', 'मौन निमन्त्रण', 'वीचि विलास', तथा परिवर्तन आदि कविताओं पर यह प्रभाव देखा जा सकता है। इनको पन्त जी ने अपनी कल्पना और मनोहारिणी कला से समिश्रित करके प्रकट किया है, जिससे वह किसी का प्रभाव न लेकर उनकी अपनी चीज बन गई है। यो तो प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति अपने अध्ययनक्रम मे अनेक विगत युग की विभूतियों से प्रभावित होता है और अवचेतन मन मे उसका प्रभाव ग्रहण भी करता जाता है। पत जी के अवचेतन पर भी अनेक प्रभाव पडे है, जो समय-समय पर उनकी अपनी कवित्व शक्ति से सज्जित होकर प्रकट होते रहे है।

पत जी की रचनाओं में प्रतिभा तथा साधना का मणिकाचन सयोग है। शातिप्रिय द्विवेदी जी के शब्दो मे-"पत जी के दर्शनार्थ प्रयाग पहुँच गया। पंत से भेट हो गई। मैंने देखा, कवि और कविता दोनों अभिन्न है, एकाकार हैं।"[1] पत जी की रचनाओ की एक विशेषता और है भावजगत का निरन्तर विकास तथा समाज बोध का काव्यात्मक चित्रण। तात्पर्य यह है कि इनकी काव्य कृतियों में भावना, कल्पना तथा विचार का त्रिवेणी सगम सपन्न हुआ है। यही कारण है कि सामाजिक परिस्थितियो तथा जीवन मूल्यो मे द्रुतगति से परिवर्तन होने पर भी पत की रचनाओ के काव्य धर्म पर काल धर्म का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ पाया है। अतः भविष्य में भी उनकी रचनाओ की लोकप्रियता तथा प्रभविष्णुता अक्षुण्ण ही रहेगी। समय-समय पर उनकी काव्य कृतियो मे आये परिवर्तन उनके व्यक्तित्व के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते है। जीव, जगत, तथा ईश्वर के प्रति पंत

---

१. शाति जोशी, सुमित्रानदन पत, जीवन और साहित्य, पृ० १७१

जी का विचार दर्शन चिन्तन के ऊर्ध्वमुखी धरातल का स्पर्श करता हुआ चला है इन रचनाओं में कवि का आध्यात्मिक दृष्टिकोण फलीभूत हुआ है।

सर्वप्रथम वीणा काव्य संग्रह की कविताओ मे कवि ने 'बालकल्पना'' अथवा ''दुधमुहॅा'' प्रयास किया है जिसको पत स्वय स्वीकार करते हैं।[१] आरम्भिक कविताएँ होने के कारण अपरिपक्वता की छाया का होना स्वाभाविक होते हुए भी वीणा की रचनाओ मे रमणीय कल्पना पाई जाती है।[२] किशोर अवस्था में प्रकृति से प्रेरणा लेकर, शैली तथा टेनिसन के प्रभाव से कोमल और सुन्दर रूप में अपनी भावात्मक अनुभूति कवि ने व्यक्त की है। बाह्य जगत से प्रभावित भाव-सौन्दर्य से परिपूर्ण इस रचना मे कहीं आत्मनिवेदन है, कहीं प्रार्थना, तो कहीं प्रकृति का आत्मनिष्ठ अकन। वीणा के प्रार्थना परक गीतों पर रवीन्द्रनाथ की ''गीताञ्जलि'' का प्रभाव है। प्रकृति के सुन्दर रूप-खण्डों की आहलादमयी अनुभुति वीणा की रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्मदर्शिता और सगीतमयता की दृष्टि से 'प्रथम रश्मि' सुन्दरतम् कविता है। प्रकृति मॉ विश्वजननी है, जिसका प्रतिबिम्ब जग के निर्भय दर्पण मे पड़ा है। पत के लिए प्रकृति एक विराट सत्ता है। उस मे वे मॉ, सगिनी, जैसे अनेक रूप के दर्शन करते है। उन विभिन्न रूपो के समाने कमी वह श्रद्धावनत होते है, तो कभी करूणा की भिक्षा मांगते है, तो कभी कुछ समानधर्मी विशेषताओ को उस में भी देखकर हर्ष-पुलकित हो जाते हैं। प्रकृति के साथ दर्शन के प्रति भी स्वाभाविक जिज्ञासा परिलक्षित होती है। पंत जी स्वामी विवेकानन्द जी की दिव्यदृष्टि एव शक्ति पर भी प्रकाश डालते हैं-

---

१ वीणा की उत्सर्ग कविता
२ वीणा 'ये तो नादान नयन गीत' पृ० १७

वह मखमल तो भक्तिभाव थे
फैले जनता के मन के
स्वामी जी तो प्रभावान है,
वे प्रदीप थे पूजन के।[1]

ग्रन्थि प्रणय काव्य माना जा सकता है। इसमे वैयक्तिक विरहजन्य वेदना को सार्वभौमिक बनाने की स्तुत्य चेष्टा भी कवि ने की है-

"ओस जल से सजल मेरे अश्रु है
पलकदल मे दूब के बिखरे पडे।
पवनपीले पात में मेरा विरह
है खिलता दलित मुरझे फूल-सा।
सुमनदल मे फूट, पागल सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हॅस रही है, मुकुल मे
वास है अज्ञात भावी कर रही
आज मेरी द्रौपदी सी परवशा।[2]

उपर्युक्त उद्धरण मे कवि ने अपनी वेदना को प्रकृति के प्रत्येक कण मे तथा इस प्रकार व्यष्टि को समष्टि मे दर्शित कराने की चेष्टा की है। इस काव्य की प्रेरणा के सम्बन्ध में स्वयं पंत जी ने भी स्वीकार किया है- "बचपन में साधु बनने के आदर्श से उन्हे मोह था तथा तिलक की गीता ने असंग कर्म और बिहारी के दोहो ने श्रृगार और सौन्दर्य की ओर आकर्षित किया था। यह 'हार' और 'ग्रंथि' को कविताओ द्वारा मुखरित हुआ।[3] आलोचको ने प्राय· इसे वैयक्तिक प्रेमभावना पर आधारित विरह-प्रधान आख्यानक काव्य कहा है। प्रेम

---

१ वीणा- 'ग्रथि', पृ० ४६
२ वीणा- 'ग्रथि', पृ० १३७
३ शाति जोशी, सुमित्रानन्दन पत, जीवन और साहित्य, पृ०- १३०

काव्य की अपूर्व मादकता अनुभूतियो की तीव्रता, भावपूर्ण, सार्थक तथा सजीव संगीतात्मकता आदि के कारण 'ग्रन्थि' एक सुन्दर काव्य-रचना मानी जाती है।

'पल्लव' मे भाषा, भाव और कला की दृष्टि से प्रौढता के दर्शन होते है। कवि के मन का आह्लाद प्रेम-विरह और विषाद की अनुभूति रूमानी धारा मे व्यक्त हुई है। इस संग्रह मे 'वीचिविलास', 'विश्वरेणु', 'निर्झर गान', नक्षत्र, 'स्याही की बूँद' जैसी शुद्ध कल्पनामय कविताएँ, 'मोह', 'विनय', 'याचना', 'विसर्जन', 'मधुकरी', जैसी भाव प्रधान रचनाएँ और 'मौन निमत्रण', 'बालापन', 'छाया', 'अनग स्वप्न' जैसी भावना और कल्पना के योग से परिपूर्ण कविताएँ सग्रहीत है। 'जीवनयान' और 'परिवर्तन' जीवनदर्शन को व्यक्त करती है। बौद्ध शून्यवाद, शकराचार्य का मायावाद और उपनिषद का अद्वैतवाद आदि विभिन्न दार्शनिक विचारो का प्रभाव कवि के चिन्तन पर परिलक्षित होता है। मानव के कोमल स्वभाव, प्रकृति की स्निग्ध सुषमा, और उसके विराट रूप की झाकी 'पल्लव' मे है।

'उच्छवास' तथा 'ऑसू' आदि रचनाओ में व्यक्तिनिष्ठ प्रेम के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति अपूर्व तल्लीनता एव मानसिक व्यापारों की रमणीयता व्यक्त की गई है।

गुजन काव्य में पंत जी मानव कल्याण तथा शुभकामनाओ के नये सिद्धान्त काव्य-बद्ध करते प्रत्यक्ष होते है। कवि के इस चिन्तन-पक्ष का विकास 'गुजन' की सघर्षमूलक सवेदनाओं एव 'ज्योत्सना' की कल्पना-प्रधान आदर्शपरक पृष्ठभूमि मे क्रमिक रूप सें होता गया है। 'गुंजन' की पहली-कविता 'तप रे मधुर- मधुर मन' में कवि विश्वचेतना मे हर क्षण स्वयं को तपाने एवं जगजीवन

की ज्वाला में गलाने का आकाक्षी है। इसीलिए वह जगजीवन से अपनत्व स्थापित करना चाहता है। कवि कही-कही वैयक्तिक सन्दर्भ की अपनी सम्वेदनाओं एव दृष्टिकोणो के बीच विश्व जीवन की समस्याओ का स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत करता है। गुजन में कवि ने अपने आपको न केवल प्रकृति प्रेमी बल्कि उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का, जीवन के हर्ष-विमर्शों का प्रेमी उद्घोषित किया है। सम्भवत यही कारण है कि पत जी को मानव का यथार्थ जीवन अपूर्ण दृष्टिगत होता है। सुख-दु ख की सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति, विश्वकल्याण की कामना और जीवन जगत के सम्बन्धो का चित्रण किया गया है। प्रकृति सुषमा के स्वतन्त्र अङ्कन के स्थान पर उस पर दर्शन का प्रभाव यत्र-तत्र स्पष्ट है। 'संध्यातारा', 'नौकाविहार', 'चॉदनी रात', आदि कविताओं में जीवन और जगत के सम्बन्धों का वर्णन तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं का चित्रण है।

युगान्त में पंत जी ने अपनी कविता के सौन्दर्ययुग का अन्त कर दिया है। युगान्त की रचनाए चिन्तन प्रधान है। इसकी प्राय· सभी कविताओं मे दार्शनिक गाम्भीर्य उपलब्ध होता है। इसके साथ ही इन सबमे एक सूत्र गुम्फित मिलता है जो कवि के तात्कालिक विचारो और भावनाओ से सम्बद्ध है। इन सभी कविताओ मे मानव जगत की मगल आशा ओत-प्रोत है। युगान्त मे पत जी की रचनाएं पूर्णरूपेण नैतिक हो गई हैं। 'बापू के प्रति' नामक कविता इस आध्यात्मिक गीतमाला का सुमेरु है। वस्तुतः कवि ने 'बापू' में अपने आदर्शों का मूर्तिमान स्वरूप पा लिया है अत मानवता का पूर्ण विकास कवि को बापू में मिल गया है। इन दार्शनिक एव आध्यात्मिक रचनाओ के अतिरिक्त युगान्त में अनेक रचनाएं कवि के स्वाभाविक प्रकृति प्रेम की व्याख्या करती हैं। इन प्रकृति चित्रों में आन्तरिकता अधिक है।

'युगवाणी' मे 'युगान्त' की ही भावनाएं अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। सर्वप्रथम कवि ने मनुष्य के विकास के लिए भौतिक एव आध्यात्मिक समन्वय के महत्व को स्वीकार किया है। 'समाजवाद' और 'गॉधीवाद' इसी समन्वय का प्रतीक है। 'युगवाणी' मे कवि ने समाज के प्रचलित जीवन की मान्यताओ का पर्यावलोकन करते हुए नवीन सस्कृति के उपकरणो की ओर सकेत किया है। युगों के मृत आदर्शों और जीर्ण परम्पराओ की तीव्र भर्त्सना की है। मार्क्स की विचारधारा का युग की विचारधारा पर जो प्रभाव पडा, उसको कवि ने 'मार्क्स के प्रति' एव 'भूत-दर्शन' में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। नारी जागरण की कामना भी 'युगवाणी' में व्यक्त हुई है-'मुक्त करो नारी को मानव, चिरबंदिनी नारी को' आदि पंक्तियो मे यही भावना व्यक्त हुई है।

'ग्राम्या' मे प्रमुख रूप से ग्राम-जीवन मे प्रचलित मध्ययुगीन रूढियो तथा अन्ध विश्वासों के प्रति कवि की प्रतिक्रियाए विभिन्न चित्रो द्वारा व्यक्त हुई हैं। ग्राम्या मे साम्यवाद की परिकल्पना भी की गई है। मार्क्सवादी विचारो का प्रभाव होते हुए भी कवि आध्यात्मिकता के पाश से सर्वथा मुक्त नहीं है।

'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की विचारधारा को देखने पर ज्ञात होता है कि कवि वर्तमान युग जीवन से तथा मध्ययुगीन परम्पराओं से असन्तुष्ट है सम्भवत वह इसीलिए उस नवीन जीवन की कल्पना करता है जिससे ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के कल्याणकारी पक्षों का समन्वय हो। 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' मे 'त्योत्सना' (नाटिका) की ही कल्पना का विस्तार दृष्टिगत होता है, कभी भावना के स्तर पर और कभी बुद्धि के स्तर पर। 'यही कल्पना अरविन्द दर्शन के लिए उर्वर भूमि सिद्ध हुई जो आगे चलकर 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', और 'उत्तरा' मे शस्य प्ररोहित हुआ। 'ज्योत्सना' के

भाव और कलाबोध की पूर्ण परिणति यदि पत जी की 'उत्तरा' मे दिखाई पडे तो कोई आश्चर्य की बात नही है।''[1]

'स्वर्णकिरण' मे कई तरह की कविताएं सकलित है, कई कविताओ की आधारभूमि सामाजिक है, कुछ कविताएँ आत्मपरक है, कुछ प्रकृति से सम्बद्ध हैं, परन्तु अधिकांश कविताएँ आध्यात्मिक है। योगी अरविन्द के विचारो के प्रभाव से मानव विकास के लिए अन्तर्विकास पर विशेष बल देते हुए कवि का चिन्तन 'स्वर्ण किरण' मे व्यक्त हुआ है। 'स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा' मे भी लगभग इसी प्रकार की कविताएँ सकलित है।

पत जी के इन दार्शनिक प्रगीतो को तीन सन्दर्भों मे रखा जा सकता है, प्रथम सन्दर्भ मे पतजी युग जीवन का अकन करते है, उसकी असगतियो एव विकृतियो को निरूपित करते है-'युगागम, 'छायादर्पण' (स्वर्णधूलि), 'अभिवादन', 'रजतातप' (स्वर्णकिरण) तथा 'उत्तरा' की 'स्वप्नवैभव' नामक कविता मे इसी प्रकार की भावनाए व्यक्त की गई है। ऊर्ध्व चेतना के माध्यम से ही विश्व को स्वर्ग बनाया जा सकता है-इस धारण की पुष्टि द्वितीय सन्दर्भ में की गई है। इस प्रकार की रचनाए है-'ऊर्ध्वचरण' और 'उद्‌बोधन' (स्वर्णधूलि)। तृतीय सन्दर्भ मे नवयुग एव नवमानव के विभिन्न काल्पनिक चित्रो का चयन किया गया है। 'उत्तरा' की अनेक रचनाएं नवमानवता के मानसिक आरोहण की सक्रिय चेतना आकांक्षा को व्यक्त करती है। सभी कविताओं मे अरविन्द दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो की व्याख्या है। 'उत्तरा' शीर्षक कविता मे चेतना के ऊर्ध्व स्तर का वर्णन किया गया है।

---

१ कवियों में सौम्य पत-डॉ० हरिवशराय 'बच्चन' पृष्ठ १२३

'युगान्तर' मे पन्त जी ने महात्मा गॉधी, 'रवीन्द्रनाथ', अवनीन्द्रनाथ, मर्यादा पुरूषोत्तम राम और योगी अरविन्द पर प्रशस्तिपरक काव्य रचना की है। 'जिज्ञासा', 'शोभा जागरण' आदि रचनाओ मे चेतना के अबोध प्रभाव का वर्णन भी है। कवि ने अन्तर्मुखी भावबोध का उद्‌घाटन इन रचनाओ मे किया है।

'सौवर्ण' में 'स्वप्न और सत्य' एव 'सौवर्ण' संकलित है। 'स्वप्न और सत्य' में कवि ने अन्तर्बाह्य समन्वय द्वारा विश्वशांति की प्रतिष्ठा की है। सौवर्ण मे नवमानवता के आधार पर मानव का कल्पनाचित्र रेखाकित है।

'अतिमा' लगभग एक वर्ष मे लिखी गई कविताओं का सग्रह है। इन कविताओं में विविधता है। 'अतिमा' के विज्ञापन में पत जी कहते हैं-''प्रस्तुत संग्रह मे प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त अधिकतर ऐसी ही रचनाए संग्रहीत हैं, जिनकी प्रेरणा युग-जीवन के अनेक स्तरों का स्पर्श करती हुई सृजन-चेतना के नवीन रूपको तथा प्रतीकों में मूर्त हुई है।''[1] अतिमा की कुछ कविताएँ आत्मपरक भी हैं-'नव अरुणोदय', 'गीतों का दर्पण', 'जन्मदिवस' और 'कूर्माञ्चल के प्रति।'

'वाणी' सग्रह की प्रमुख कविताए 'आत्मिका' और 'बुद्ध के प्रति' है। 'बुद्ध के प्रति' नामक कविता मे बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति आदर और श्रद्धा रखते हुए भी पत जी ने अत्यन्त कलात्मकता के साथ बौद्ध दर्शन का विरोध किया है, जो कवि का स्तुत्य प्रयास कहा जा सकता है। 'आत्मिका' इस संग्रह की सबसे लम्बी कविता है। इसका उपशीर्षक है-'सस्मरण' और 'जीवन दर्शन'। इस कविता मे कवि ने अपने जीवन विकास के साथ-साथ अपने दार्शनिक दृष्टिकोण के विकास को भी स्पष्ट किया है।

---

१ अतिमा-सुमित्रानन्दन पत-विज्ञापन।

'कला और बूढा चाद' की कविताओ को कवि ने 'रश्मिपदी काव्य' और 'स्फुरणात्मक काव्य' का एक रूप माना है। यह सहज स्फुरण अनुभूति के माध्यम से व्यक्त नहीं हो सकता। इसीलिए बिम्ब एव प्रतीकों का प्रयोग और उनकी अर्थ गम्भीरता कवि के काव्य में उत्तरोत्तर बढती गई है।

'किरणवीणा' काव्य सग्रह मे प्रकृति, प्रेम आदि से सम्बद्ध अपनी मान्यताओ का उद्घाटन पन्त जी ने किया है। इसमे पत जी के अपने जीवन से सम्बद्ध कुछ तथ्य भी स्वत प्रकाश मे आ गए है।

'हरी बॉसरी सुनहरी टेर' रचना कवि के शृगार काव्य के सरगम का सकलन है।

'पौ फटने से पहले' काव्य सग्रह मे आज के ह्रासयुगीन् भावनात्मक संघर्ष का गहन अन्धकार तथा कल की सम्वेदना का आशारूप प्रकाश संग्रहीत है।

पुरूषोत्तम राम एक आत्मपरक खण्डकाव्य है। इसमे कवि ने 'मै' को उदात्तीकृत रूप मे अकित करते हुए मन और जीवन के अतिरिक्त अपनी चेतनात्मक अनुभूति की रूपरेखा भी अकित की है।

'पतझर' मे अधिकतर रचनाऍ भावप्रधान तथा युगबोध से प्रेरित है, कुछ विचार प्रधान भी है। 'भावक्रान्ति कविता मे आदर्श समाज की कामना व्यक्त की गई है।

गीतहस में प्रकृति, मानव जगत और विश्व के सम्बन्ध में कवि की चिन्तनपरक अनुभूति ने व्यजना पायी है।

'शशि की तरी' स्मृति गीतो का संग्रह है। 'शखध्वनि' में मुख्यत नये जागरण के स्वरो को तथा विश्व जीवन के भीतर उदय हो रहे नये मनुष्यत्व की रूप रेखाओ को अभिव्यक्ति मिली है।

'समाधिता' मे कवि के जीवन की अनुभूतियो को अभिव्यक्ति मिली है। जीवन सत्य की स्वीकृति, वास्तविकतापूर्ण विचाराङ्कन, चिन्तन मे परिपक्वता और ऊर्ध्व चेतना का साक्षात्कार आदि बातो से यह रचना परिपूर्ण है।

'आस्था' की कविताए मुख्यत आत्मकेन्द्रित तथा धराकेन्द्रित है।

'गीत-अगीत' की कविताओं के भावबोध मे युगवैषम्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

काव्य संकलन

पल्लविनी और चिदबरा पत जी की प्रमुख कविताओ के बृहद सग्रह है। 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास', 'ऑसू', 'आत्मिका', 'कुर्मांचल के प्रति', 'जन्म दिवस', -इन सकलनो की प्रमुख रचनाओ मे से है।

'आधुनिक कवि भाग दो' की प्रमुख रचनाएँ है-'प्रथम रश्मि', उच्छ्वास की बालिका', 'ऑसू की बालिका', 'ग्रन्थि से', 'बादल', 'मौन निमंत्रण', 'निष्ठुर परिवर्तन', एक तारा, 'नौका विहार', 'ताज', महात्मा जी के प्रति', 'ग्राम युवती', ग्रामश्री इत्यादि।

'खादी के फूल' नामक काव्य संकलन की कविताएँ महात्मा गाधी की मृत्यु के उपरान्त सन् १९४८ मे पतजी ओर डा० बच्चन द्वारा लिखी गई है। इन कविताओ मे पत जी की गाधी जी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा झलकती है।

'युगपथ', काव्य सकलन दो भागों मे है। पहला भाग 'युगान्त' का नवीन और परिवर्द्धित संस्करण है। दूसरे भाग का नाम 'युगान्तर' रखा गया है, जिसमें कवि की नवीन रचनायें संकलित है।

'रश्मि बध' मे कवि की 'वीणा' से लेकर 'वाणी' तक लिखी गई प्रमुख रचनाओ का संग्रह हुआ है।

'स्वर्णिम रथचक्र' कवि पत की 'उच्छ्वास' से लेकर 'वाणी' तक के संग्रहो की लम्बी कविताओ का अपने प्रकार का यह प्रथम सग्रह है। यह सग्रह पूरे युग की काव्य परिक्रमा है।

'तरापथ' में पंत जी की 'वीणा' से लेकर 'पतझर, एक भाव क्रान्ति' तक की प्रमुख कवितायें सकलित है। 'चित्रांगदा' मे पंत जी की वे रूपात्मक कवितायें संकलित है, जिनमें चित्रात्मकता का गुण विशेष रूप से उभरकर आया है।

'गन्धवीथी' सकलन पतजी के रूप, रग, रस और गंध से युक्त प्रकृति काव्य का प्रतिनिधित्व करता है। सम्पूर्ण 'गन्धवीथी' चार भागो मे विभक्त है, जिनके नाम क्रमश आत्मिका, छायाकाल, नवदृष्टि और चेतना-स्पर्श है।

'मुक्ताभ' मे कवि की प्रारम्भ से लेकर अब तक की चुनी हुई कविताएँ सग्रहीत है।

रेडियो रूपक

'ज्योत्सना' काव्य रूपक है। इसकी भूमिका वायवी है जहाँ मन स्वर्ग से भी अनेक नवीन सृजन शक्तियाँ भू-मानस पर अवतरित होती हैं। यहाँ कवि ने पूर्वी और पश्चिमी सस्कृति की विसगतियो पर प्रकाश डाला है। इस रूपक के गीतों में कवि की आत्मानुभूति के साथ चिन्तन की रेखाये भी क्रमश· विकीर्ण होती गई है।

रजत शिखर (१९५१) रेडियो से प्रसारित काव्य रूपक है। इसकी रचना कवि ने अपने रेडियो मे कार्य करने के काल के अन्तर्गत की थी।

'शिल्पी' मे 'शिल्पी', 'ध्वंसावशेष', और अप्सरा ये तीन काव्य रूपक सकलित है।

अनुदित रचनाएँ

'मधुज्वाल' रूबाइयत उमर खैय्याम का हिन्दी मे अनुवाद पत जी ने सन् १९४८ मे किया। कवि ने अपनी प्रतिभा के मूल के भावों को कोई ठेस न पहुॅचाकर उनको अत्यन्त सुन्दर एव उत्कृष्ट रूप मे व्यक्त किया है। यह ग्रन्थ मूल से किसी भी प्रकार कम रोचक नहीं कहा जा सकता।

काव्य रूपक

'लोकायतन' की रचना करके कवि पंत ने साहित्य जगत को एक अनुपम महाकाव्य प्रदान किया है। कवि ने इसे 'युग जीवन का महाकाव्य' कहा है। इसमे अपने युग को समक्ष रखकर सामान्य पात्रो के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति की गई है। पत जी के शब्दो मे-"साप्रतिक युग का मुख्य प्रश्न सामूहिक आत्मा का मन·सगठन है। अत आधुनिक मानव को अन्त·शुद्धि के द्वारा अन्तर्जगत के नये संस्कारो को गढाना है। सत्य का दृष्टिकोण मान्यताओ का दृष्टिकोण है और ये मान्यताएॅ दो प्रकार की है एक ऊर्ध्व अथवा आध्यात्मिक और दूसरी समदिक् जो हमारे नैतिक सामाजिक आदर्शों के रूप मे, विकास क्रम मे उपलब्ध होती है। ऊर्ध्व मान्यताएॅ उस अन्तस्थ सूत्र की तरह है जो हमारे बहिर्गत आदर्शों को सामन्जस्य के हार मे पिरोकर हृदय में धारण करने योग्य बना देती है।" कवि

पन्त के जीवनव्यापी चिन्तन एव वैचारिक श्रृखला का प्रतिनिधित्व करता हुआ भावी युगो के अधिमानस के पूर्णरूप की मागलिक झॉकी प्रस्तुत करता है। पूर्वस्मृति खण्ड या आस्थासर्ग से आरम्भ होते हुए जीवनद्वार, ग्रामशिविर, मुक्तियज्ञ, आत्मदान, मधुस्पर्श, मध्यबिन्दु, द्वन्द्व, विज्ञान, अन्तर्विरोध, उत्क्रान्ति, उत्तरस्वप्न आदि सर्गों मे विकसित होती हुई। कथावस्तु महाकाव्य का रूप धारण करती है। लोकायतन का सम्पूर्ण कथानक दार्शनिकता, प्रकृति के सुन्दर कुरूप चित्र और कुण्ठा युक्त मानव समाज के चित्र, भारतीय राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियॉ आदि विभिन्न भूमियों पर विकसित होता गया है। सन् १९२५-३० से आरम्भ होकर सन् १९६३ तक की स्थिति तक वह सम्बन्धित है, जिसके नेता हैं महात्मा गॉधी। महाकाव्य की रचना मे परम्परा का अनुसरण होते हुए भी उसका दार्शनिक धरातल नितान्त भिन्न और उच्च है। गॉधी जी के आन्दोलन से योगी अरविन्द के दर्शन तक ऊर्ध्वमुखी चेतना 'लोकायतन' मे दिखाई देती है। स्वतन्त्र शैली का निर्माण, प्राकृतिक वर्णन, दार्शनिकता बेजोड व्यंजना क्षमता से 'लोकायतन' आधुनिक काल का एक विशिष्ट काव्य है। महाकाव्य कवि की साधना की चरम परिणति होता है, उसमे कवि की गहन अनुभूतियो के साथ जीवन दर्शन और विश्व सत्य काव्य के स्तर पर प्रतिफलित होते हैं। 'लोकायतन' पत जी की काव्य साधना की चरम परिणति है ऐसा स्पष्ट कहा जा सकता है किन्तु इस अर्थ में नहीं कि इसमे लोकानुभूति, जीवन-दर्शन विराट विश्वसत्य कवि की अनुभूति की ऑच मे तप कर काव्य के स्तर पर उभरे है, बल्कि इस रूप में कि पन्त जी के काव्य मे जब तक अलग-अलग जो शक्तियॉ, अशक्तियॉ, विचारधाराऍ कच्चे-पक्के जीवन-दर्शन लक्षित होते रहे है वे 'लोकायतन' मे एक स्थान पर पूॅजीभूत हो गए है। सच पूछा जाय तो 'लोकायतन' में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पन्त जी पहले न कह चुके हों। अर्थात् अपनी काव्य गरिमा, सत्यानुभूति और विचार ऊष्मा मे 'लोकायतन' पन्त जी के

अमहाकाव्यो से आगे नही है, आगे केवल एक बात मे है कि इसका फलक विराट है और इस विराट फलक पर पत जी का समूचा पिछला काव्य-लोक एक दूसरे से जुडा हुआ फैला है। 'लोकायतन' लोकचेतना को वाणी देने वाला आधुनिक युग का अप्रतिम महाकाव्य है।

'सत्यकाम' सन् १६७५ मे प्रकाशित एक खण्डकाव्य है। इस काव्य की विज्ञप्ति मे पतजी इसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते है- "वैदिक युग का यह काव्य अपने उन्मेषो, प्रेरणाओ तथा विचार- भावनाओ की चैतसिक उन्मुक्तता मे अतुकान्त छद के पखो पर ही सहज-स्वाभाविक तथा मर्म स्पर्शी उडान भर सकेगा, इस दृष्टि से मैने इसमे तुकान्त चरणो का प्रयोग उचित नहीं समझा है। . . 'सत्यकाम' मूलत· धरती के जीवन का काव्य है। सच्चे अध्यात्म की परिणति जैसा कि विवेकानन्द भी कहते हैं- "धरती की जीवन-सम्पन्नता एव परिपूर्णता ही मे होनी चाहिए। भारतीय परम्परावादी मनीषा को धरती के स्तर पर उतारने के लिए अनेक वैचारिक सोपानो की सहायता लेनी पडी है, जो कि इस काव्य के एक अनिवार्य एव स्वाभाविक अग बन गए हैं।"[१] 'सत्यकाम' में पत जी ने औपनिषदिक पृष्ठभूमि की कसौटी ही मे आधुनिक जीवन-मूल्यो को आंकने का प्रयास किया है।

नारी मुक्ति सम्बन्धी उनकी धारणा को भी छान्दोग्य उपनिषद के पच्चीसवे खड से प्रेरणा प्राप्त हुई है। पत जी के लिए ईश्वर, धर्म, साधना, योग को स्वीकार करना मानव-जीवन को स्वीकार करना है।

पत जी की सभी रचनाओं का स्वर औपनिषदिक मानव-वाद का स्वर है जो औपनिषदिक सत्य और धरती के स्पदन के ऐक्य से अनुगुंजित है।

---

१ पौ फटने से पहले- सुमित्रानन्दन पत- विज्ञापन

पत साहित्य पर एक विहगम दृष्टिपात करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि उनके आरम्भिक काव्य मे भावोद्वेग को आकार देने वाली कल्पना-छवियो का बाहुल्य है। कवि का आरम्भिक काव्य मधुर-तरल है, गम्भीरता का उसमे अभाव है। 'परिवर्तन' के उपरान्त काव्य मे सौन्दर्य दृष्टि के साथ जीवन-दृष्टि को समाहित करने का प्रयास परिलक्षित होता है। कवि ने 'युगान्त', युगवाणी और 'ग्राम्या', काव्य ग्रन्थों की रचना मार्क्स तथा गांधी जी से प्रभावित होकर युग और राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में की है। 'ग्राम्या' के उपरान्त पंत जी अरविन्द दर्शन की ओर उन्मुख हुए और उनके परवर्ती साहित्य मे इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। पंत जी मुख्य रूप से अतर्मुखी सौन्दर्योपासक कवि है। स्वय पंत जी 'उत्तरा' की भूमिका मे अरविन्द के प्रति अपना ऋण स्वीकार करते है। इसके लिए 'स्वर्ण किरण' तथा पश्चात् की कविताएँ भी प्रबल प्रमाण है। योगीराज अरविन्द के प्रभाव के फलस्वरूप पत जी के अस्पष्ट स्वप्न तथा चितन अत्यत सुस्पष्ट, सुगठित एव पूर्ण दर्शन के रूप मे बदल गये। पत जी अरविन्द के दर्शन को विश्वकल्याण के लिए अमूल्य तथा ऐतिहासिक देन मानते है। पत जी का व्यक्तित्व अपनी काव्य-यात्रा मे प्रकृति-प्रेम, जनवाद, अरविन्द-दर्शन और जीवन के प्रति आस्था से प्रेरित होकर चला है। प्रारम्भ से ही पत जी मे सौन्दर्य और आस्थामूलक विचारधारा के कारण एक झिलमिलाते रस का अवगुण्ठन रहा है जो कवि की कृति को उदात्त बनाता रहा है। निष्कर्ष रूप मे पत जी के काव्य वैभव का मधुर स्वर प्रकृति के विशाल प्रागण से आरम्भ होकर, प्रेम की परिधियो से श्वास लेकर, लोक-कल्याण के पथानुगामी साम्यवाद को स्वीकार करता हुआ, अन्त मे मानवात्मा और सस्कृतिक उत्थान के लिए अध्यात्म मे शान्ति पाता है।

अध्याय-पंचम्

निराला और पन्त की आध्यात्मिक काव्य सृष्टि की प्रेरक शक्तियों में साम्य और वैषम्य

देशकाल की सीमा मे नही बधा है तथा जो विशाल विश्व की सार्वकालिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। यह वेदना केवल अवसाद से आक्रान्त नही है, बल्कि इसमे अनुभूति की तीव्रता व सच्चाई है। दु ख और वेदना मनुष्य की चेतना-दृष्टि का प्रसार करते है। इस करुणा का एक महत कारण दार्शनिक चिन्तन भी है, क्योंकि मनुष्य के अहं का नाश दु ख द्वारा ही होता है और इसमें मनुष्य को एक दूसरे के निकट लाने की क्षमता भी है इसीलिए कवि पन्त कहते है-

तप रे मधुर-मधुर मन
विश्व वेदना मे तप प्रतिपल
जग जीवन की ज्वाला मे गल
वन की कलुष की उज्जवल कोमल"

निराला का जीवन तो पीडा और सघर्ष मे ही व्यतीत हुआ। इस समस्त क्षोभ और पीडा का सचित रूप उनकी पक्तियो मे दृष्टव्य है-

दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ, आज जो नहीं कही।

छायावादी काव्य की इस वैयक्तिक वेदना मे विश्व वेदना को आत्मसात करने की शक्ति है, निराशा और पलायन का भी एक निश्चित उत्स है। परिणामत· यह प्रकृति-सद्वृत्ति और मगलकारी परिवर्तन की ओर सक्रिय थी।

निराला और पन्त दोनो ने अपनी-अपनी मातृभूमि से यथेष्ट संस्कार ग्रहण किया था। निराला बैसवाडा (अवध) के धार्मिक जीवन की सरसता से प्रभावित हुये। कबीर के निगुर्ण पदों के प्रभाव को निराला ने स्वीकार किया है। आध्यात्मिकता के बीज तो निराला मे थे ही वे जीवन के प्रारम्भिक दिनो मे अंकुरित भी होने लगे थे- "भक्त साधारण पिता का पुत्र था। सारा सासरिक

ताप पिता के पेड पर था, उस पर छाह उसी छाह के छिद्रो से रश्मियो के रग, हवा से फूलो की रेणु मिश्रित गध, जगह-जगह ज्योर्तिमय पल मे न्हाई भिन्न-भिन्न रूपो की प्रकृति को देखता रहता था। स्वभावत जगत के कारण चरण भगवान पर उसकी भावना बध गई।"[१] उक्त पक्तियो मे कवि की भाव विह्वलता स्पष्ट है। निराला को प्रारम्भ मे महावीर जी इष्ट थे, किन्तु संत प्रेमानन्द जी के दर्शन के बाद से निराला ने सभी धर्मों का समाहार ब्रह्मचारी महावीर उनके राम, देवी और समस्त देव दर्शन उन सन्यासी प्रेमानन्द जी मे ही समाहित पाया। उन्हें ज्योति-स्वरूप अज्ञात शक्ति का आभास मिला। बंगाल मे महिषादल निवास काल मे निराला ने एक साधु से मिलने की कथा दी है जिससे स्पष्ट है कि निराला को सस्कार से ही दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा भगवत्कृपा प्राप्त थी।[२] बंगाल मे महाकाली की पूजा आदि शक्ति के रूप मे होती थी जिससे निराला प्रभावित थे। कवि पत जी के व्यक्तित्व के निर्माण मे सर्वाधिक योग उनकी जन्मभूमि कौसानी का है जो कूर्मांचल की एक विशिष्ट सौदर्य-स्थली मानी जाती है। यहाँ की प्रकृति में कवि का किशोर मन अत्मविस्मृत तथा दृष्टि आश्चर्यचकित हो जाया करती थी।[३] "आत्मिका" नामक रचना में अपनी रम्यरूपा जन्मभूमि की सौन्दर्यानुभूति को पन्त जी ने इस प्रकार समेटा है-

> हिमगिरि प्रातर था दिग् हर्षित, प्रकृति क्रोड ऋतु शोभा कल्पित,
> गध गुँधी रेशमी वायु थी, मुक्त नील गिरि पखो पर स्थित।
> आरोही हिमगिरि चरणो पर रहा ग्राम व मरकत मणिकण,
> श्रद्धानत आरोहण के प्रति मुग्ध प्रकृति का आत्म समर्पण।

---

१ चतुरी चमार, भक्त और भगवान, पृ० ७१

२ चतुरी चमार, स्वामी दयानन्द जी महाराज और मैं, पृ० ५५-५६,

३ पत साठ वर्ष- एक रेखाकन, पृ० ११

जन्म के कुछ ही घटो बाद जो बालक मातृ-स्नेह से वचित हो गया था, प्रकृति-माता की इस हरी-भरी गोद मे पहुँच कर, विभोर रहने लगा। इसी के परिणामस्वरूप बालक के मन मे प्रकृति के प्रति अगाध मोह घर करने लगा। कवि पंत के शब्दो में- मेरे प्रबुद्ध होने से पहले ही, प्राकृतिक सौन्दर्य की मौन, रहस्यभरी अनेकानेक मोहक तहे, अनजाने ही, एक के ऊपर एक, अपने अनन्त वैचित्र्य में, मेरे मन के भीतर जैसे जमा हो गईं।[१] पत पर दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव, घर के सात्विक-धार्मिक वातावरण का पड़ा। जहॉ नित्य प्रति साधु सतो का आना-जाना लगा रहता था। पत जी के पिता श्री प० गगादत्त पंत के घर भी उच्चकोटि के सन्यासियों का आगमन हुआ करता था। अल्मोडा मे भी साधु-सतो के विरागमय जीवन के प्रति बालक पत के हृदय में बराबर आकर्षण बना रहा एक बार तो वह "एक लबे, गोरे, घुँघराले केशो वाले साधु के सुन्दर रूप, मधुर स्वभाव तथा विद्वतापूर्ण भाषणो से आकर्षित होकर, स्कूल की पढाई छोडकर, उसके साथ जाने को तैयार हो गये थे।[२] इस प्रकार पत जी का मन विरक्ति-वैराग्य के सस्कारो मे पूर्णरूप से डूबा हुआ था। एक ओर प्रकृति-छटा की मोहकता मे कवि-जीवन को जगत से बाधने की चेष्टा की, तो साधु-संतो की संगति ने उसके सस्कारी मन के निर्वेद को और गहरा कर दिया। फलतः प्रवृति-निवृति अथवा राग-विराग की द्वन्द्वात्मकता मे विभक्त कवि का व्यक्तित्व, निरन्तर दोनो मे सतुलन स्थापित करने के लिए सचेष्ट रहा। निराला और पंत दोनो कवियो ने प्रारम्भ से ही आध्यात्मिकता को किसी न किसी रूप में आत्मसात किया।

---

१ पत-साठ वर्ष, एक रेखाकन, पृ० १२
२ पत- साठ वर्ष, एक रेखाकन, पृ० १८

निराला ओर पंत दोनो कवि गाधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति का ढंग भिन्न-भिन्न था। निराला की सवेदना का निर्माण सीधे बगाल रेनेसां के परिणामो से हुआ था। वे बगाल मे थे और राजा राममोहनराय से लेकर श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द नव-जागरणवादी सवेदना को सही रूप मे देखने का अवसर पा चुके थे। उनकी मानवतावादी दृष्टि तथा स्वतत्रता की कामना में बंगीय अंतर्दृष्टि स्पष्ट है। निराला गाधी की भॉति अहिसा में विश्वास न करके 'एक बार और नाच तू श्यामा' का आह्वान करते हैं। वह अंधकार को पहचानते है तथा अधकार के बाहर जो प्रकाश है उससे भी परिचित है। इसीलिए उनकी कविताओ मे 'गहन कारा' की भी अनुभूति है और 'शक्तिपूजा' के द्वारा क्षयी सस्कृति के प्रतीक रावण के विनाश का विश्वास भी है। वे तत्कालीन व्यवस्था के उतने ही विरोधी है जितने गाधीजी थे। लेकिन उनकी निष्ठाए थोडी पृथक हैं। गाधी जी भी दीन-हीन के अश्रु पोछने मे जीवन का सर्वस्व पा लेते है, निराला भी 'चतुरी चमार' और 'कुल्ली भाट' के साहचर्य से परितोष पाते है। 'विधवा', 'भिक्षुक' और 'कुकुरमुत्ता', जैसी रचनाओ मे उन्होने मानवता के प्रति अपनी अशेष सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है और परिस्थितियो के व्यग्य को पूरी तरह से समझा है। कवि पत की रचना प्रक्रिया पर गाधी जी का और गाधीवादी दर्शन का सीधा प्रभाव पड़ा है। प्रकृति, वनस्पतिया, नदी, पहाड़, झरने के किसी बाला के बाल-जाल से यदि उन्हें अधिक आकर्षक प्रतीत होते है तो उसे उस युग की सवेदना से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता है। परिवेश मनुष्य से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाए तो इसका कोई कारण होना चाहिए और इसके कारण के रूप मे राष्ट्रीय भावना के सस्पर्श को हम लक्षित कर सकते हैं। पत जी जगत की चिर-सुषमा से निर्मित सुन्दरतम मनुष्य की कल्पना करते है जो युगीन मनोभूमि का विराट सत्य है। उनकी 'बापू' शीर्षक कविता मे गाधी जी के

महत् व्यक्तित्व के प्रति भी प्रबल आस्था व्यक्त हुई है। स्पष्ट है कि आत्मवाद के सान्निध्य मे पत जी की आत्मा का अक्षय धन सुरक्षित है। "वे उपयोग के भीतर से आत्मयोग के कवि है, आसक्त आस्तिक है। गाधी जी की आत्मा, रवीन्द्र की रसात्मकता और मार्क्स की प्रगतिशीलता का पत के कवि मानस मे समन्वय है।[1] निराला की 'कुकुरमुत्ता' तथा पत की 'ग्राम्या' आदि रचनाओ मे मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु निराला और पत ने कभी भी पूर्ण रूप से मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं किया।

निराला और पन्त पर रवीन्द्रनाथ का अप्रतिम प्रभाव था। रवीन्द्र सिद्धान्तत सर्ववादी थे- प्रकृति के माध्यम से अलक्षित, चिरन्तन, अव्यक्त सत्ता के रहस्य को वयक्त करने वाले। अत निराला और पत मे यह सर्ववादी चेतना बराबर मिलती है। परन्तु पत जी का सर्ववाद एक दार्शनिक का स्वर धारण न कर सका। वे अपने प्रारम्भिक काव्य में रहस्यवादी कवि के रूप मे उस मात्रा मे नहीं आते जिस मात्रा मे 'गीतिका' मे निराला जी दिखाई पडते है। चूॅकि निराला पर रवीन्द्र का अत्यधिक प्रभाव था अत. 'गीतिका' व 'अनामिका' के अनेक गीतों में निराला का रूप शुद्ध रहस्यवादी दिखाई पड़ता है। 'परिमल' की कविताओं मे निराला का जैसा दार्शनिक रूप व्यक्त होता है, वीणा-पल्लव की कविताओं मे पत जी का रूप नहीं दिखाई पडता। अर्थात् पत जी ने पल्लव काल की कविताओ मे रहस्य के स्पर्शो का जिज्ञासा व कौतूहल का वर्णन अवश्य किया है परन्तु पूर्ण रहस्यवादी रूप उन्हे नहीं प्राप्त हो सका जैसा कि नूतन काव्य युग में उन्हें प्राप्त हुआ। निराला और पंत दोनो मे ही लौकिक प्रेम को सृष्टि व्यापी विरह के रूप मे चित्रित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। कवि वेदना से प्रकृति के कण-कण को

---

१ भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत- डॉ० कर्ण सिह, पृ० १६१-६२

व्यथित देखता है। पत की आरम्भिक कविताओ की भाव योजना एव बिब-योजना तथा निराला की अर्थछवियो तथा प्रयोग वक्रताओ पर रवीन्द्र-काव्य का प्रभाव है। पत जी ने हिन्दी कविता में जिस कोमलकात पदावली एव प्रकृति के स्वतत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की उस पर रवीन्द्र की काव्य-चेतना का परोक्ष-अपरोक्ष रूप मे प्रभाव था। निराला की अनुप्रास योजना एवं आध्यात्मिक चेतना बगाली मानसिकता के ओत-प्रोत थी।

रवीन्द्र ने नारी के जिस मासल एवं आध्यात्मिक सौन्दर्य की विराटता एव उदान्तता को अभिव्यक्ति दी, निराला उससे पूर्णत प्रभावित थे। गृहिणी के सौन्दर्य एवं गृह-बोध के प्रति दोनो ही महाकवियो मे एक ही सास्कृतिक चेतना के दर्शन होते है। गृहिणी को प्रेयसी एव प्रिया के सबोधनो से अभिषिक्त कर दोनो ने उसे प्रेरणा एवं शक्ति के रूप मे देखा तथा नारीत्व की मर्यादा के सदर्भ मे नये प्रतिमान निश्चित किये। भावशबलता, विराट् कल्पना-वैभव एव अशेष मानवता तथा देश के प्रति दोनों मे अगाध श्रद्धा, आत्मीयता एव भावनात्मक दृष्टिकोण लक्षित होता है। निराला की अनुभूति स्वस्थ जीवन सघर्ष तथा जहालत की है, दारुण व्यथा एवं आत्म सघर्ष की है, वहीं रवीन्द्र वायवीय कल्पना, ऐश्वर्य एवं अगाघ कीर्ति, शांति निकेतन के सांस्कृतिक परिवेश एवं अभिजात वश-परम्परा के कवि रहे है, रवीन्द्र ने 'उर्वशी' के विराट सौन्दर्य से अपने को जोडा है तो निराला ने 'विधवा' की व्यथा से। रवीन्द्र के विराट व्यक्तित्व का आदर्श हिमालय का औदात्य रहा है तो निराला धरती की निष्फल मनुहारो को वाणी प्रदान करते है। ऐसा नहीं है कि रवीन्द्र ने विधवा की व्यथा एवं जन-जीवन की वेदना की अनुभूति न की हो पर इसे उनकी आत्यधिक सवेदनशीलता एव भावानात्मक दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। किन्तु निराला

निरन्तर वेदना और संघर्ष मे निरत रहे है। रवीन्द्र का औदात्य उनके विराट चितन एव भावशबलता मे है, निराला का प्रामाणिक अनुभूति मे। जीवन सघर्षो से जितना निराला जूझ सके है उतना रवीन्द्र नहीं। रवीन्द्र तो मानसिक स्तर पर ही प्राय तनावो एव निर्मम कष्टो की अनुभूति करते रहे है। उन्होने ताजमहल के प्रति अपनी मुग्धता को रूपायित किया है तो निराला 'चतुरी चमार' और 'कुकुरमुत्ता' के प्रति रागमय बने रहे है। इस प्रकार रवीन्द्र मे अगाध शाति एव स्निग्धता है, तो निराला मे अप्रतिम ओज। रवीन्द्र का ऐश्वर्य उनकी कल्पना मे है, निराला का कटु तिक्त अनुभूति और अभाव मे। इन अतर्विरोधो के बावजूद भी सास्कृतिक चेतना एव गम्भीर अतर्दृष्टि, सतप्त-मानवता के प्रति अशेष सहानुभूति तथा आत्मोन्मेष के संदर्भ मे दोनों में पर्याप्त समता है। 'रवीन्द्र कविता कानन' में स्वय निराला मे महाकवि के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा व्यक्त की है। पत जी को प्रकृति मे असीम का जो आमत्रण 'मौन निमत्रण' शीर्षक जैसी कविताओ मे मिला है उसकी अनुभूति रवीन्द्र ने भी अपने आध्यात्मिक गीतो मे की है। वियोगी कवि के 'अतर्नाद' पर रवीन्द्र की रहस्यानुभूति की छाया स्पष्ट है। पत जी की 'ज्योत्सना' पर रवीन्द्र जी की प्रतीकात्मक शैली का प्रभाव पड़ा है। रवीन्द्रनाथ वैष्णव कवि परम्परा की भक्ति, सूफी रहस्यभावना की पीर, वेदान्तियो के ज्ञानयोग, शैली के विश्वमानवतावाद, कीट्स की रूपतृष्णा, वर्डस्वर्थ एवं ब्लैक की आध्यात्मिक चेतना से पूरी तरह प्रभावित थे एव इसी क्रम में कवि निराला और पंत पर भारतीय कवि तथा चिन्तन परम्परा के साथ ही पाश्चात्य कवियो की शैली और विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है।

निराला और पत दोनो कवियो ने अपनी रचनाओ मे अद्वैतवाद का वर्णन किया है। दोनो ने ही उपनिषदो और शाकर वेदान्त का गहरा अध्ययन किया

था। इनकी कविताओ मे यह प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। निराला की भाति पत भी स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित रहे। तत्व-चितन से पत इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि एक ही असीम आनन्द सर्वत्र व्याप्त है और विश्व मे उसके ही विविध रूप प्रकट होते हैं। अत वे मानवत्मा के सुख-दु:ख से बाहर जगत की चिन्ता में व्यस्त हो जाते है। पंत जी विवेकानन्द के समान ही यूरोप के जीवन सौष्ठव और भारत के अध्यात्म दर्शन के समन्वय के आकांक्षी है। किन्तु निराला रामकृष्ण मिशन तथा स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन से इतना गहन प्रभावित हुये कि उनका सम्पूर्ण जीवन दर्शन ही बदल गया। इनके व्यक्तित्व को दार्शनिक आधार रामकृष्ण परमहस की भाव-साधना और विवेकानन्द के वेदान्ती अद्वैतवाद से मिला। स्वामी विवेकानन्द के निष्कपट हृदय, निर्भय आचरण, तथा उद्धत-मुखर स्वभाव से निराला के भीतर आत्मविश्वास का भाव जगा। स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त के दोनो मूलतत्वो को निराला ने आत्मसात किया था- शक्ति साधना और करूणा। 'राम की शक्ति पूजा' पर विवेकानन्द की रचनाओं, 'नाचुक ताहते श्यामा' और 'अम्बास्तोत्र' का गहन प्रभाव है।

निराला का अद्वैतवाद शाकर वेदान्त की भाति गतिहीन नहीं है वरन् वह स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिये गये वेदान्त के उपनिषद-आधार के अनुसार गतिशील है। क्योकि शकर के अद्वैतवाद के अनुसार यदि संसार और मनुष्य नश्वर है तो इनकी चिन्ता या सेवा भी व्यर्थ है। जबकि निराला मे ज्ञान की सापेक्षता अधिक पाई जाती है, शाश्वत ब्रह्म, आत्मा की अनुभूति अस्थिर मायामय जगत के विरूद्ध नहीं है। अत उनका दर्शन जड होकर नहीं रहा गया है अपितु उसके लिए वह प्रेरणा और शक्ति का सम्बल बना। जीव-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हुये उन्होने मिथ्यात्व पर अधिक बल दिया, इसलिए

उनकी कविताओ मे प्रकृति के सुन्दर चित्र अकित हुये है। स्वामी विवेकानन्द की भॉति निराला का ध्यान जीवन और जगत की स्थिति तथा उन्नयन की ओर ही रहा। जीवन की महानता के लिए 'आत्मवाद' का सिद्धान्त उन्हे मान्य है किन्तु घोर पीड़ा और करुणापूर्ण क्षणों में वे विवेकानन्द के समान ही 'पहले रोटी पीछे धर्म' की घोषणा करने लगते है।[१] जब कवि मानवता की मुक्ति का समर्थन प्रबलता से करता है तो वह अपने सबसे बडे प्रलोभन अपवर्ग और अधिवास को भी छोडने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, यद्यपि उसका यही विश्वास है कि मनुष्य का चरम लक्ष्य नदी के समान उसी चेतना सागर मे मिल जाना है ताकि पुन· इन बन्धनो मे न पड़ना पड़े अर्थात् कवि जन्म-मरण के बन्धनों से मिलने वाली मुक्ति को टाल सकता है किन्तु जन जीवन की विषमता, पीडा दु ख, दीनता को सहन नहीं कर सकता, इसीलिए निराला अद्वैतवादी भी है और द्वैतवादी भी,[२] भक्त भी और ज्ञानी भी। वास्तव में निराला के काव्य में यह अंतर्विरोध और विरोधों का सामंजस्य इसलिए दिखाई देता है कि वे किसी निश्चित विचार, परम्परा के पोषक आँख-मूदकर नहीं बनना चाहते थे। निराला की तरह पत भी शांकर वेदान्त के अतिवादी रूप से बचाव करते हैं। वे उपनिषदों की अरविन्दवादी व्याख्या को सबसे अधिक वैज्ञानिक व भारतीयता से युक्त मानते है। विश्व के पदार्थों के मूल मे एक ही अव्यक्त सत्ता अवस्थित है, कवि को इस पर पूर्ण विश्वास है। तथा-

> निराकार तम मानो सहसा, ज्योति-पुञ्ज में हो साकार,
> बदल गया द्रुत जगत-जाल मे, घर कर नाम रूप नाना।

---

१. अधिवास, नामक कविता
२. पचवटी, नामक कविता

उक्त पंक्तियों मे 'मानों' शब्द के द्वारा कवि ने शाकर अद्वैतवाद को केवल उपमान के रूप मे प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'चॉदनी' का वर्णन करते हुए अनिर्वचनीयता को उपमान बनाया है-

> वह है, वह नही अनिर्वच, जग उसमे, वह जग में लय,
> साकार चेतना सी वह, जिसमे अचेत जीवाशय
> (गुंञ्जन से चॉदनी)

पन्त प्रकृति के सुन्दर रूप का चित्रण करते समय जगत को मिथ्या नहीं मानते। प्रकृति के भीतर ब्रह्म की झलक देखना एक बात है और ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या बताना दूसरी बात है। अत· कवि ने जगत को मिथ्या न मानकर क्षणिक परन्तु सत्य माना है। 'पल्लव' की कविताओ से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। पंत प्रकृति में रहस्यमय सत्ता का दर्शन करते हैं, वे जगत को शंकराचार्य के अर्थो मे मिथ्या नही मानते, क्षणभगुर अवश्य मानते हैं। विवेकानन्द व रामतीर्थ जगत को मिथ्या मानते थे, किन्तु मिथ्यात्व पर जोर न देकर आत्मा व ब्रह्म की एकता पर जोर देते थे। निराला जगत को मिथ्या मानते हैं और उनके काव्य मे सर्वदा एक स्वर आत्मा व ब्रह्म की एकता का गूॅजता है। अत पत जी वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, काल मे सर्ववादी हैं मिथ्यावादी नहीं। सर्ववाद के अतर्गत किसी ईश्वर विशेष की कल्पना नहीं होती, लेकिन समस्त जड़-चेतना मे व्याप्त किसी सूक्ष्म विराट चेतन सत्ता का अस्तित्व मान्य होता है। इसी चेतन सत्ता के आधार पर आत्मा के मूल्य का अकन किया जाता है। इसी चिरन्तन सत्ता के सहारे कवि पन्त ने कल्पना की है कि मानव जीवनाकाश मे सुख-दुःख अस्थिर प्रतीत होता है, परन्तु जीवन नित्य और चिरन्तन है। जीवन जो दुःख-सुख से ऊपर है वह मन का एक मात्र अवलंबन है। जन्म और मृत्यु इस जगत के दो द्वार हैं जिनमें से आना जाना लगा रहा है। जब तक हम विश्व के

मनस्तत्व के इन नर रूप के कोषो को धारण किये रहेगे तब तक मानव जाति विश्राम नही ले सकेगी। अतएव हमें पुन अनन्त मे लय होकर अव्यक्त हो जाना चाहिए। बीज ससार को पत्र पुष्प देकर फिर बीज में ही परिणत हो जाता है, यही सृष्टि का रहस्य है। पंत जी अरविन्द दर्शन की ओर इसलिए आकर्षित हुये कि अरविन्द का अध्यात्म भारतीय उपनिषदो एवं दर्शनो के प्रकाश में पनपता हुआ समस्त लोक जीवन को दिव्य चेतना मे परिणत करने की व्यावहारिक योजना पर आधारित है। इसमे विज्ञान, उद्योग तथा वैयक्तिक सुखो को माया कहकर तिरस्कृत नही किया गया अपितु विश्व मंगल की कामना और आकांक्षा है। इस प्रकार निराला और पंत दोनो ही कवि मानवता तथा लोक-कल्याण के पुजारी है।

कवि निराला और पत ने अपने युग के सास्कृतिक उन्नायको के भावात्मक वैचारिक आदर्श, महामानव की विराट कल्पना और विश्व मानवता की एकता के महान स्वप्नों सदृश अपने जीवन और जगत के सन्दर्भ मे स्वप्निल आदर्शो और उदात्त विचारो के ताने बाने बुने थे, जिसे रामकृष्ण परमहस धर्म समन्वय के रूप मे, रवीन्द्रनाथ विश्व बन्धुत्व के रूप मे तथा गांधी अहिंसात्मक मानव सत्य के रूप मे अपने-अपने क्षेत्रो मे मूर्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। अतः कवि द्वय ने जिस आध्यात्मिक सत्ता के साक्षात्कार की जिज्ञासा की थी तथा सर्वात्मवादी चेतना की अनुभूति की थी, वह नितान्त वैयक्तिक थी और सास्कृतिक मनीषियों के जीवनादर्शो से भी उसका ताल-मेल बैठता था। यह अलग बात है कि उन्होने अपनी रूचि और विचारधारा के अनुसार अपने युग के चिन्तन को ग्रहण किया।

अध्याय-षष्ठम्

उपसंहार

अध्याय-६

उपसंहार

छायावादी कवि निराला और पत का जो आध्यात्मिक चितन है उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सास्कृतिक कहा जा सकता है। इन्होनें व्यक्तिगत समस्याओ से लेकर विश्व तक की समस्याओं के समाधान को आध्यात्मिकता तथा सांस्कृतिक वैभव के पुनरुत्थान में देखा। पंत और निराला दोनों की कविताओ में मानव जीवन का वर्णन है, किन्तु दोनो की अनुभूतियों मे अंतर हैं। निराला अपने काव्य मे जीवन को जैसा देखते है वैसा ही चित्रित करते है। जीवन की कटु सच्चाई, मानव जीवन की विविध मनोदशाओ तथा स्थितियों की झॉकी उनके काव्य में ज्यों की त्यो दिखाई पडती है। इसीलिए कहीं-कहीं उनका उग्र रूप भी प्रकट हुआ है। पत जी कल्पना और भावना के कवि है, वे मानव-ससार को अपनी कल्पनानुसार जैसा देखना चाहते है वैसा चित्रण करते है। इसलिए वे अपनी कविताओ मे सहज और कोमल है। किन्तु निराला और पत दोनों को हम सामंजस्य करते हुये पाते हैं। "निराला के व्यक्तित्व में एक ऐसा तत्व है जो युग की समस्त जीवन-भूमिका पर एक समन्वय स्थापित कर सका है। पहले वे आशा के स्वर को लेकर चले है, तो पीछे आक्रोश के स्वर को अत में परमसत्ता के आह्वान के स्वर को|अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिक साधना के बल पर उनके काव्य मे एक सामंजस्य है। यह सामंजस्य की भूमिका मानवतावादी और वेदांती स्तर पर है, जीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है।"[1] पत की कविताओ मे यह समन्वय प्रारम्भ से ही दिखाई पडता है। जो मानव के

---

१ कवि निराला- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ० ५६

दु:ख से द्रवित होने के कारण उपजा जबकि निराला निराशा, क्षुब्ध आक्रोश के वशीभूत होकर समन्वय तक पहुॅचे। दोनों कवि वेदान्ती और मानवतावादी हैं, दोनो पर विवेकानन्द रामकृष्ण परमहस का प्रभाव पडा है। निराला जी का मानववाद उग्र विद्रोह की भूमि पर टिका है, पत की दृष्टि विश्वजनीन और सार्वभौमिक सिद्धान्तों और आकांक्षाओं की स्थापना और उपलब्धि की ओर रही है। निराला जी मे प्रखरता है, पत जी में स्निग्धता है। निराला जी का मानवतावाद बाहरी विषमताओ के प्रति विद्रोह लेकर चला है, पत जी का मानवतावाद बहिरतर की एकता की विश्व प्रेममयी वाणी है। निराला ने भक्तिभाव, दर्शन और आत्मा की प्रणय-साधना के बीच होकर मानवतावादी दर्शन की स्थापना करना चाहा है। पत जी ने भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञान के सामजस्य का युग की आवश्यकता के आधार पर स्वप्न देखा है। पत और निराला दोनो ही छायावादी एवं रहस्यवादी होने के कारण प्रकृति के माध्यम से अपनी अनुभूतियो को अभिव्यक्त करते है, तथा वे प्रकृति के माध्यम से परमात्मा तक पहुॅचते है। किन्तु प्रकृति के जितने व्यापक और पूर्ण चित्र पत के काव्य मे है उतने निराला के काव्य मे नही। पत जी ने प्रकृति का वर्णनात्मक-भावात्मक चित्रण किया है। निराला जी प्रकृति के भावात्मक रूप के अधिक रमे है, तथा रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण उनका काव्य दार्शनिक चिन्तनपरक है, इसीलिए वे रामानुज के विशिष्टाद्वैत को अपनाते है।

यह आकस्मिक नही था कि छायावादी कवि अपनी अंतश्चेतना तथा युग-जीवन के प्रति कल्पनादर्शी एवं भावमय थे। जब सांस्कृतिक विचारधारा, सामाजिक युगदर्शन एवं राजनीतिक क्षेत्र में मानव-गरिमा को प्रतिष्ठा मिली तथा पूॅजीवादी व्यवस्था ने व्यक्तिवादी चेतना के प्रसार में सक्रिय योगदान दिया तो पूरा

युग ही अपने वैयक्तिक आदर्शों, आत्माभिव्यक्ति एव नवनिर्माण के सदर्भ मे कल्पना-प्रवण एवं स्वप्नदर्शी बन गया। नव-जागरण के सास्कृतिक एव राजनीतिक मनीषी भी युग-जीवन के प्रति अत्यधिक भावप्रवण और स्वप्नदर्शी थे। विवेकानन्द हो अथवा रवीन्द्र, अरविन्द हो अथवा गाधी, सभी युगचिन्तक विश्व-मानवता, विश्व-सस्कृति तथा अतिमानस की कल्पना मे तल्लीन थे। आध्यात्मिक अनुभूति, मानवतावादी चेतना तथा 'रामराज्य' जैसी कल्पना ने उनके महान व्यक्तित्व का निर्माण किया था। रवीन्द्र की शान्ति निकेतन की कल्पना और मानव मात्र के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण, अरविन्द और गाधी के राष्ट्रीयता सम्बन्धी सास्कृतिक विचार और पृथ्वी पर धरती के अवतरण तथा पृथ्वी के स्वर्गीकरण की आकांक्षा, अन्तर्सत्यों एवं अतर्निर्देशों को बुद्धि की तुलना मे सशक्त मानने की प्रवृत्ति आदि ऐसी विशेषताए है जो युग की भावनात्मक एव कल्पनाप्रवण मनोभूमि को अतर्ध्वनित करती है। निराला और पत भी इससे अछूते नहीं रहे। निराला अपने प्रारम्भिक जीवन से ही भारतीय दर्शनशास्त्र के प्रति जिज्ञासु रहे थे। वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, महाभारत, रामायण, आदि ग्रन्थो का भी उन्होने पारायण किया था। दार्शनिक दृष्टि से वे शकर के विशिष्टाद्वैत से प्रभावित थे। आधुनिक युग के महर्षि दयानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश', श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की रचनाओ ने उन्हे सर्वाधिक प्रभावित किया। इस प्रभाव के कारण पाखण्ड-विरोध, रूढ़ियों का बहिष्कार और संकीर्ण मतवाद का खण्डन जैसी प्रवृत्तियाॅ उनके स्वाभाव का अंग बन गई थी। रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व-कृतित्व ने निराला को मर्मांतक रूप मे प्रभावित किया। अपने युग की तरह निराला भी अपने युग की क्रान्तिकारी चेतना और धार्मिक संस्कारो के अतर्द्वन्दों और अन्तर्विरोधो को झेलते हैं। वेदान्त से निराला का परिचय था किन्तु वे कोई

साप्रदायकि या धार्मिक आचार्य नही थे, न कोई तत्वचितक थे, न पुजारी और न भक्त ही थे। वे सामाजिक दृष्टि से जागरूक एक जनवादी रचनाकार थे। सभी प्रभावो को ग्रहण करने के बावजूद निराला एक सर्वथा मौलिक और अपने ढग के अद्वितीय व्यक्ति और रचनाकार थे। पंत की कविताओं पर विभिन्न आध्यात्मिक प्रेरणा का स्वरूप आरम्भ से ही दिखाई पड़ता है। बाल्यकाल से ही उनकी सत वृत्ति थी जो उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई तथा उन पर विस्मय के स्थान पर चिन्तन प्रधान रूप छाने लगा। पत 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक मार्क्स के भौतिक दर्शन से प्रभावित है किन्तु साम्यवाद के दर्शन का प्रभाव ग्रहण करने पर भी वे विकासवादी ही बने रहे। उन्होने सदैव भौतिक का अध्यात्म से समन्वय करने का प्रयत्न किया। इसका मूल कारण भारतीय दर्शन का कवि पर प्रभाव ही है। तभी तो प्रगतिवादी कवि पत अरविन्द के प्रभाव को ग्रहण कर रहस्यवादी अथवा आध्यात्मवादी हो गये। पंत जी की आत्मा मे यह आधार पहले से ही तैयार था। 'वीणा' काल की रचनाओ पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसीलिए उनके काव्य में सयम और अनुशासन है। जब वे 'आओ सुन्दर' कहते हैं तो 'आओ शिव' भी कहते हैं। रागी और विरागी दो प्रवृत्तिया उनके मन मे दिखाई देती है जिन्होने उन्हें संतुलन प्रदान किया है। इसी सयोग ने उनकी सरसता को उच्छृखल और उनकी कल्पना को शुष्क होने से बचा लिया है। इस प्रकार निराला और पत दोनो ही आध्यात्मिक निष्ठा रखने वाले कवि है, निराला ओर पत दोनो ने ईश्वर के प्रति विश्वास प्रकट किया है। उनका मानना है कि ईश्वर के प्रति विश्वास जन-चेतना मे समाहित है, यह विश्वास भूख और कष्ट के दिनो मे घट सकता है या विस्मृत हो सकता है, यह

स्वाभाविक है। किन्तु मनुष्य को ईश्वर मे विश्वास से ही आत्मिक शक्ति का दृढ आधार मिलता है। उदाहरणार्थ -

"ईश्वर को मरने दो, हे मरने दो"- पत
(स्वर्णधूति पृ० ९४)

"कैसे हुई हार, तेरी निराकार"- निराला
(अर्चना पृ० ८५)

दोनो कविताओ मे नास्तिकता नही है अपितु शुद्ध अस्तिकता है, केवल परिस्थितियो के प्रभाव के कारण वह तिरोहित है। निराला और पत बाहरी तथा भीतरी दोनों सौन्दर्य के लिए प्रयत्नशील है। निराला के काव्य में दर्शन की बारीकियों का विवेचन कम मिलता है किन्तु उसमे चिन्तन और बुद्धितत्व की प्रधानता भी है। जब कि पत जी का काव्य किसी न किसी दार्शनिक आग्रह में फॅसा दिखाई देता है। वे दार्शनिक की भॉति जीव-जगत ब्रह्म के सम्बन्ध में अपने विचारो को रखते हैं। 'एकतारा' और 'नौका विहार' कविताओ मे उनकी यह मुद्रा देखी जा सकती है। जबकि निराला जीव-जगत-ब्रह्म के सम्बन्ध मे अपने चिन्तन को विचारधारा विशेष के आधार पर मधुर-कल्पना तथा सवेदनशीलता के साथ प्रतीक या उपमान के द्वारा व्यक्त करते है। वे उपदेश की प्रवृत्ति से बचते हुये दिखाई देते है। 'तुम और मै' दार्शनिक कविता में उन्होंने अपने हृदय में उठे हुये भावों को ही अभिव्यक्त किया है, बौद्धिक विवेचना मे कम पड़े है। वास्तव मे निराला और पत की सम्पूर्ण चेतना "मानवतावादी' है। इसीलिए इनका आध्यात्मिक चिन्तन मानव के व्यापक मूल्यों पर आधारित है, जिसका आधार "विश्व मानव वाद" बना।

परिशिष्ट

निराला-साहित्य

१ अनामिका
२. परिमल
३. गीतिका
४. तुलसीदास
५ अणिमा
६ कुकुरमुत्ता
७ बेला
८ नये पत्ते
९ अर्चना
१० आराधना
११ गीतगुज
१२. प्रबन्ध प्रतिमा
१३ प्रबध पद्‌म
१४. चाबुक
१५. चयन
१६. रवीन्द्र कविता कानन
१७ भारत में विवेकानंद (अनुवाद)

पंत-साहित्य

१. उच्छ्वास
२. पल्लव
३ वीणा
४ ग्रन्थि
५ ज्योत्सना
६. युगान्त
७. पॉच कहानियॉ
८. युगवाणी
९ ग्राम्या
१० पल्लविनी
११ आधुनिक कवि
१२ स्वर्णकिरण
१३ मधुज्वाल
१४ खादी के फूल (सहलेखक बच्चन)
१५. युगपथ
१६ उत्तरा
१७ स्वर्णधूलि
१८ रजतशिखर
१९ शिल्पी
२०. गद्यपथ
२१ अतिमा
२२ कविश्री (सुमित्रानदन पत)
२३ सौवर्ण
२४ वाणी
२५. रश्मिबध
२६ कला और बूढा चाद
२७ चिदम्बरा
२८. साठ वर्ष एक रेखाकन
२९. अभिषेकिता
३०. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-पंत
३१ हार (उपन्यास)
३२. शिल्प और दर्शन
३३. हरी बासुरी सुनहरी टेर
३४. लोकायतन
३५. छायावाद पुनर्मूल्याकन
३६. कला और सस्कृति
३७. किरणवीणा
३८ पुरुषोत्तमराम
३९ पौ फटने से पहले
४०. स्वर्णिम रथचक्र
४१ पतझर एक भाव क्रान्ति
४२ तारापथ
४३. सयोजिता
४४. चित्रागदा
४५ शखध्वनि
४६ शशि की तरी
४७. समाधिता
४८. आस्था
४९. गधवीथी
५०. सत्यकाम
५१ मुक्ताभ
५२. गीत-अगीत
५३. सक्रान्ति

सहायक ग्रन्थ-सूची

विवेकानन्द साहित्य (तृतीय खण्ड)

धर्म का उद्भव और विकास - ई०डब्ल्यू० हापकिन्स

धर्म और दर्शन - जमनालाल जैन

धर्म और समाज - डॉ० राधाकृष्णन

निराला काव्य और व्यक्तित्व - डॉ० धनन्जय वर्मा

महाकवि निराला काव्य कला और कृतियॉ - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

कवि निराला - रामरतन भटनागर

आधुनिक साहित्य - आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी

हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी

स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य - डॉ० रामविलास शर्मा

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि - डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास - डॉ० देवराज

महाकवि निराला - अभिनन्दन ग्रन्थ

काव्य का देवता निराला - विश्वम्भर 'मानव'

विवेकानन्द चरित - सत्येन्द्रनाथ मजुमदार

सत्यार्थ प्रकाश - स्वामी दयानन्द सरस्वती

आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद - डॉ० विश्वनाथ गौड

निराला की साहित्य साधना (१) - डॉ० रामविलास शर्मा

भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत - डॉ० कर्णसिह

आधुनिक भारतीय चितन - डॉ० विश्वनाथ नरवणे

सस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर

स्वाधीन भारत की जय हो - विवेकानन्द प्रथम सस्करण
महर्षि स्वामी दयानन्द - महेश प्रसाद मौलवी आलिम-फाजिल
आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत - डॉ० केशरीनाराण शुक्ल
बगला काव्य की भूमिका - हुमायूँ कबीर
रवीन्द्रनाथ - एक जीवनी - कृष्ण कृपलानी, अनु०
एकोत्तरशती - रवीन्द्रनाथ
गीत पचशती - रवीन्द्रनाथ
गीताजलि - रवीन्द्रनाथ
रवीन्द्रनाथ टैगोर और आधुनिक बगला साहित्य - सुकुमार सेन
कवियों में सौम्य सत - डॉ० हरिवशराय बच्चन
सुमित्रानन्दन पंत - विश्वम्भरमानव
सुमित्रानन्दन पत - शचीरानी गुर्टू
पत और पल्लव - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
युगकवि पत की काव्य साधना - विनय कुमार
पंत-युग और साहित्य - यशदेव शल्य
आधुनिक कवि पत - कृष्णकुमार सिन्हा
ज्योति विहग - शान्तिप्रिय द्विवेदी
पतजी का नूतन काव्य और दर्शन - डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ० सुधीन्द्र
सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य (प्रथम एव द्वितीय खण्ड) - सुश्री शान्ति जोशी
अरविन्द का जीवन दर्शन - इन्द्रसेन
अरविन्द का सर्वांग दर्शन - डॉ० रामनाथ शर्मा

संस्कृत

ईशावास्योपनिषद्

कठोपनिषद्

व्यास महाभारत

महाभागवत्

वेदान्त सूत्र

पत्र-पत्रिका

समन्वय

मतवाला

रसवंती (निराला विशेषाक तृतीय खण्ड)

अवन्तिका-जनवरी (१९५४)

निष्ठा - रवीन्द्र अक

सरस्वती

यग इण्डिया

सम्मेलन पत्रिका

धर्मयुग

माधुरी

आलोचना